ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

सौप्तिकपर्व

प्रथमोऽध्यायः

तीनों महारथियोंका एक वनमें विश्राम, कौओंपर उल्लूका आक्रमण देख अश्वत्थामाके मनमें क्रूर संकल्पका उदय तथा अपने दोनों साथियोंसे उसका सलाह पूछना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अन्तर्यामी नारायण भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओंका संकलन करनेवाले महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

संजय उवाच

ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः ।
उपास्तमनवेलायां शिबिराभ्याशमागताः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार कृपाचार्यके द्वारा अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेक हो जानेके अनन्तर वे तीनों वीर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा एक साथ दक्षिण दिशाकी ओर चले और सूर्यास्तके समय सेनाकी छावनीके निकट जा पहुँचे ॥ १ ॥

विमुच्य वाहांस्त्वरिता भीता समभवंस्तदा ।
गहनं देशमासाद्य प्रच्छन्ना न्यविशन्त ते ॥ २ ॥

शत्रुओंको पता न लग जाय, इस भयसे वे सब-के-सब डरे हुए थे, अतः बड़ी उतावलीके साथ वनके गहन प्रदेशमें जाकर उन्होंने घोड़ोंको खोल दिया और छिपकर एक स्थानपर वे जा बैठे ॥ २ ॥

सेनानिवेशमभितो नातिदूरमवस्थिताः ।
निकृत्ता निशितैः शस्त्रैः समन्तात् क्षतविक्षताः ॥ ३ ॥

जहाँ सेनाकी छावनी थी, उस स्थानके पास थोड़ी ही दूरपर वे तीनों विश्राम करने लगे। उनके शरीर तीखे शस्त्रोंके आघातसे घायल हो गये थे । वे सब ओरसे क्षत-विक्षत हो रहे थे ॥ ३ ॥

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पाण्डवानेव चिन्तयन् ।
श्रुत्वा च निनदं घोरं पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४ ॥
अनुसारभयाद् भीताः प्राङ्मुखाः प्राद्रवन् पुनः।

वे गरम-गरम लंबी साँस खींचते हुए पाण्डवोंकी ही चिन्ता करने लगे । इतनेहीमें विजयाभिलाषी पाण्डवोंकी भयंकर गर्जना सुनकर उन्हें यह भय हुआ कि पाण्डव कहीं हमारा पीछा न करने लगें; अतः वे पुनः घोड़ोंको रथमें जोतकर पूर्व दिशाकी ओर भाग चले ॥ ४½ ॥

ते मुहूर्तात् ततो गत्वा श्रान्तवाहाः पिपासिताः॥ ५ ॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः क्रोधामर्षवशं गताः ।
राज्ञो वधेन संतप्ता मुहूर्तं समवस्थिताः ॥ ६ ॥

दो ही घड़ीमें उस स्थानसे कुछ दूर जाकर क्रोध और अमर्षके वशीभूत हुए वे महाधनुर्धर योद्धा प्याससे पीड़ित हो गये । उनके घोड़े भी थक गये । उनके लिये यह अवस्था असह्य हो उठी थी । वे राजा दुर्योधनके मारे जानेसे बहुत दुखी हो एक मुहूर्ततक वहाँ चुपचाप खड़े रहे ॥ ५-६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अश्रद्धेयमिदं कर्म कृतं भीमेन संजय ।
यत् स नागायुतप्राणः पुत्रो मम निपातितः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरे पुत्र दुर्योधनमें दस हजार हाथियोंका बल था तो भी उसे भीमसेनने मार गिराया। उनके द्वारा जो यह कार्य किया गया है, इसपर सहसा विश्वास नहीं होता ॥ ७ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां वज्रसंहननो युवा ।
पाण्डवैः समरे पुत्रो निहतो मम संजय ॥ ८ ॥

संजय ! मेरा पुत्र नवयुवक था । उसका शरीर वज्रके समान कठोर था और इसीलिये वह सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य था, तथापि पाण्डवोंने समराङ्गणमें उसका वध कर डाला ॥ ८ ॥

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं गावल्गणे नरैः ।
यत् समेत्य रणे पार्थैः पुत्रो मम निपातितः ॥ ९ ॥

गवल्गणकुमार ! कुन्तीके पुत्रोंने मिलकर रणभूमिमें जो मेरे पुत्रको धराशायी कर दिया है, इससे जान पड़ता है कि कोई भी मनुष्य दैवके विधानका उल्लङ्घन नहीं कर सकता॥

अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम संजय ।

हतं पुत्रशतं श्रुत्वा यन्न दीर्णं सहस्रधा ॥ १० ॥

संजय ! निश्चय ही मेरा हृदय पत्थरके सारतत्त्वका बना हुआ है, जो अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर भी इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो गये ॥ १० ॥

कथं हि वृद्धमिथुनं हतपुत्रं भविष्यति ।
न ह्यहं पाण्डवेयस्य विषये वस्तुमुत्सहे ॥ ११ ॥

हाय ! अब हम दोनों बूढ़े पति-पत्नी अपने पुत्रोंके मारे जानेसे कैसे जीवित रहेंगे ? मैं पाण्डुकुमार युधिष्ठिरके राज्यमें नहीं रह सकता ॥ ११ ॥

कथं राज्ञः पिता भूत्वा स्वयं राजा च संजय ।
प्रेष्यभूतः प्रवर्तेयं पाण्डवेयस्य शासनात् ॥ १२ ॥

संजय ! मैं राजाका पिता और स्वयं भी राजा ही था । अब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञाके अधीन हो दासकी भाँति कैसे जीवननिर्वाह करूँगा ? ॥ १२ ॥

आज्ञाप्य पृथिवीं सर्वां स्थित्वा मूर्ध्नि च संजय ।
कथमद्य भविष्यामि प्रेष्यभूतो दुरन्तकृत् ॥ १३ ॥

संजय ! पहले समस्त भूमण्डलपर मेरी आज्ञा चलती थी और मैं सबका शिरमौर था; ऐसा होकर अब मैं दूसरोंका दास बनकर कैसे रहूँगा । मैंने स्वयं ही अपने जीवनकी अन्तिम अवस्थाको दुःखमय बना दिया है ! ॥ १३ ॥

कथं भीमस्य वाक्यानि श्रोतुं शक्ष्यामि संजय ।
येन पुत्रशतं पूर्णमेकेन निहतं मम ॥ १४ ॥

ओह ! जिसने अकेले ही मेरे पूरे-के-पूरे सौ पुत्रोंका वध कर डाला, उस भीमसेनकी बातोंको मैं कैसे सुन सकूँगा ?

कृतं सत्यं वचस्तस्य विदुरस्य महात्मनः ।
अकुर्वता वचस्तेन मम पुत्रेण संजय ॥ १५ ॥

संजय ! मेरे पुत्रने मेरी बात न मानकर महात्मा विदुरके कहे हुए वचनको सत्य कर दिखाया ॥ १५ ॥

अधर्मेण हते तात पुत्रे दुर्योधने मम ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः किमकुर्वत संजय ॥ १६ ॥

तात संजय ! अब यह बताओ कि मेरे पुत्र दुर्योधनके अधर्मपूर्वक मारे जानेपर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने क्या किया ? ॥ १६ ॥

संजय उवाच

गत्वा तु तावका राजन् नातिदूरमवस्थिताः ।
अपश्यन्त वनं घोरं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ १७ ॥

संजयने कहा—राजन् ! आपके पक्षके वे तीनों वीर वहाँसे थोड़ी ही दूरपर जाकर खड़े हो गये । वहाँ उन्होंने नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे भरा हुआ एक भयंकर वन देखा ॥ १७ ॥

ते मुहूर्तं तु विश्रम्य लब्धतोयैर्हयोत्तमैः ।
सूर्यास्तमनवेलायां समासेदुर्महद् वनम् ॥ १८ ॥
नानामृगगणैर्जुष्टं नानापक्षिगणावृतम् ।
नानाद्रुमलताच्छन्नं नानाव्यालनिषेवितम् ॥ १९ ॥

उस स्थानपर थोड़ी देरतक ठहरकर उन सब लोगोंने अपने उत्तम घोड़ोंको पानी पिलाया और सूर्यास्त होते-होते वे उस विशाल वनमें जा पहुँचे, जहाँ अनेक प्रकारके मृग और भाँति-भाँतिके पक्षी निवास करते थे, तरह-तरहके वृक्षों और लताओंने उस वनको व्याप्त कर रक्खा था और अनेक जातिके सर्प उसका सेवन करते थे ॥ १८-१९ ॥

नानातोयैः समाकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।
पद्मिनीशतसंछन्नं नीलोत्पलसमायुतम् ॥ २० ॥

उसमें जहाँ-तहाँ अनेक प्रकारके जलाशय थे, भाँति-भाँतिके पुष्प उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे, शत-शत रक्त कमल और असंख्य नीलकमल वहाँके जलाशयोंमें सब ओर छा रहे थे ॥ २० ॥

प्रविश्य तद् वनं घोरं वीक्षमाणाः समन्ततः ।
शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधं ददृशुस्ततः ॥ २१ ॥

उस भयंकर वनमें प्रवेश करके सब ओर दृष्टि डालनेपर उन्हें सहस्रों शाखाओंसे आच्छादित एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया ॥ २१ ॥

उपेत्य तु तदा राजन् न्यग्रोधं ते महारथाः ।
ददृशुर्द्विपदां श्रेष्ठाः श्रेष्ठं तं वै वनस्पतिम् ॥ २२ ॥

राजन् ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ उन महारथियोंने पास जाकर उस उत्तम वनस्पति (बरगद) को देखा ॥ २२ ॥

तेऽवतीर्य रथेभ्यश्च विप्रमुच्य च वाजिनः ।
उपस्पृश्य यथान्यायं संध्यामन्वासत प्रभो ॥ २३ ॥

प्रभो ! वहाँ रथोंसे उतरकर उन तीनोंने अपने घोड़ोंको खोल दिया और यथोचितरूपसे स्नान आदि करके संध्योपासना की ॥ २३ ॥

ततोऽस्तं पर्वतश्रेष्ठमनुप्राप्ते दिवाकरे ।
सर्वस्य जगतो धात्री शर्वरी समपद्यत ॥ २४ ॥

तदनन्तर सूर्यदेवके पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचलपर पहुँच जानेपर धायकी भाँति सम्पूर्ण जगत्को अपनी गोदमें विश्राम देनेवाली रात्रिदेवीका सर्वत्र आधिपत्य हो गया ॥ २४ ॥

ग्रहनक्षत्रताराभिः सम्पूर्णाभिरलंकृतम् ।
नभोंऽशुकमिवाभाति प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ २५ ॥

सम्पूर्ण ग्रहों, नक्षत्रों और ताराओंसे अलंकृत हुआ आकाश जरीकी साड़ीके समान सब ओरसे देखनेयोग्य प्रतीत होता था ॥ २५ ॥

इच्छया ते प्रवल्गन्ति ये सत्त्वा रात्रिचारिणः ।
दिवाचराश्च ये सत्त्वास्ते निद्रावशमागताः ॥ २६ ॥

रात्रिमें विचरनेवाले प्राणी अपनी इच्छाके अनुसार उछल-कूद मचाने लगे और जो दिनमें विचरनेवाले जीव-जन्तु थे, वे निद्राके अधीन हो गये ॥ २६ ॥

रात्रिचराणां सत्त्वानां निर्घोषोऽभूत् सुदारुणः ।
क्रव्यादाश्च प्रमुदिता घोरा प्राप्ता च शर्वरी ॥ २७ ॥

रात्रिमें घूमने-फिरनेवाले जीवोंका अत्यन्त भयंकर शब्द प्रकट होने लगा । मांसभक्षी प्राणी प्रसन्न हो गये और वह भयंकर रात्रि सब ओर व्याप्त हो गयी ॥ २७ ॥

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे दुःखशोकसमन्विताः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिरुपोपविविशुः समम् ॥ २८ ॥

रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था । उस भयंकर वेलामें दुःख और शोकसे संतप्त हुए कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा एक साथ ही आस-पास बैठ गये ॥ २८ ॥

तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समीपतः ।
तमेवार्थमतिक्रान्तं कुरुपाण्डवयोः क्षयम् ॥ २९ ॥
निद्रया च परीताङ्गा निषेदुर्धरणीतले ।
श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः ॥ ३० ॥

वटवृक्षके समीप बैठकर कौरवों तथा पाण्डवयोद्धाओंके उसी विनाशकी बीती हुई बातके लिये शोक करते हुए वे तीनों वीर निद्रासे सारे अंग शिथिल हो जानेके कारण पृथ्वीपर लेट गये । उस समय वे भारी थकावटसे चूर-चूर हो रहे थे और नाना प्रकारके बाणोंसे उनके सारे अंग क्षत-विक्षत हो गये थे॥

ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ ।
सुखोचितावदुःखार्हौ निषण्णौ धरणीतले ॥ ३१ ॥

तदनन्तर कृपाचार्य और कृतवर्मा—इन दोनों महारथियोंको गाढ़ी नींद आ गयी । वे सुख भोगनेके योग्य थे, दुःख पानेके योग्य कदापि नहीं थे, तो भी धरतीपर ही सो गये थे ॥ ३१ ॥

तौ तु सुप्तौ महाराज श्रमशोकसमन्वितौ ।
महार्हशयनोपेतौ भूमावेव ह्यनाथवत् ॥ ३२ ॥
क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत ।
न वै स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव श्वसन् ॥ ३३ ॥

महाराज ! बहुमूल्य शय्या एवं सुखसामग्रीसे सम्पन्न होनेपर भी उन दोनों वीरोंको परिश्रम और शोकसे पीड़ित हो अनाथकी भाँति पृथ्वीपर ही पड़ा देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रोध और अमर्षके वशीभूत हो गया । भारत ! उस समय उसे नींद नहीं आयी । वह सर्पके समान लंबी साँस खींचता रहा॥

न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानो हि मन्युना ।
वीक्षाञ्चक्रे महाबाहुस्तद् वनं घोरदर्शनम् ॥ ३४ ॥

क्रोधसे जलते रहनेके कारण नींद उसके पास फटकने नहीं पाती थी । उस महाबाहु वीरने भयंकर दिखायी देनेवाले उस वनकी ओर बारंबार दृष्टिपात किया ॥ ३४ ॥

वीक्षमाणो वनोद्देशं नानासत्त्वैर्निषेवितम् ।
अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसैर्युतम् ॥ ३५ ॥

नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे सेवित वनस्थलीका निरीक्षण करते हुए महाबाहु अश्वत्थामाने कौओंसे भरे हुए वटवृक्षपर दृष्टिपात किया ॥ ३५ ॥

तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन् ।
सुखं स्वपन्ति कौरव्य पृथक् पृथगुपाश्रयाः ॥ ३६ ॥

कुरुनन्दन ! उस वृक्षपर सहस्रों कौए रातमें बसेरा ले रहे थे । वे पृथक्-पृथक् घोंसलोंका आश्रय लेकर सुखकी नींद सो रहे थे ॥ ३६ ॥

सुप्तेषु तेषु काकेषु विस्रब्धेषु समन्ततः ।
सोऽपश्यत् सहसा यान्तमुलूकं घोरदर्शनम् ॥ ३७ ॥

उन कौओंके सब ओर निर्भय होकर सो जानेपर अश्वत्थामाने देखा कि सहसा एक भयानक उल्लू उधर आ निकला॥

महास्वनं महाकायं हर्यक्षं बभ्रुपिङ्गलम् ।
सुदीर्घघोणानखरं सुपर्णमिव वेगितम् ॥ ३८ ॥

उसकी बोली बड़ी भयंकर थी । डील-डौल भी बड़ा था । आँखें काले रंगकी थीं, उसका शरीर भूरा और पिङ्गलवर्णका था । उसकी चोंच और पंजे बहुत बड़े थे और वह गरुड़के समान वेगशाली जान पड़ता था ॥ ३८ ॥

सोऽथ शब्दं मृदुं कृत्वा लीयमान इवाण्डजः ।
न्यग्रोधस्य ततः शाखां प्रार्थयामास भारत ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! वह पक्षी कोमल बोली बोलकर छिपता हुआ-सा बरगदकी उस शाखापर आनेकी इच्छा करने लगा॥

संनिपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहङ्गमः ।
सुप्ताञ्जघान सुबहून् वायसान् वायसान्तकः ॥ ४० ॥

कौओंके लिये कालरूपधारी उस विहङ्गमने वटवृक्षकी उस शाखापर बड़े वेगसे आक्रमण किया और सोये हुए बहुत-से कौओंको मार डाला ॥ ४० ॥

केषांचिदच्छिनत् पक्षाञ्शिरांसि च चकर्त ह ।
चरणांश्चैव केषांचिद् बभञ्ज चरणायुधः ॥ ४१ ॥

उसने अपने पंजोंसे ही अस्त्रका काम लेकर किन्हीं कौओंके पंख नोच डाले, किन्हींके सिर काट लिये और किन्हींके पैर तोड़ डाले ॥ ४१ ॥

क्षणेनाहन् स बलवान् येऽस्य दृष्टिपथे स्थिताः ।
तेषां शरीरावयवैः शरीरैश्च विशाम्पते ॥ ४२ ॥
न्यग्रोधमण्डलं सर्वं संछन्नं सर्वतोऽभवत् ।

प्रजानाथ ! उस बलवान् उल्लूने, जो-जो कौए उसकी दृष्टिमें आ गये, उन सबको क्षणभरमें मार डाला । इससे वह सारा वटवृक्ष कौओंके शरीरों तथा उनके विभिन्न अवयवोंद्वारा सब ओरसे आच्छादित हो गया ॥ ४२½ ॥

तांस्तु हत्वा ततः काकान् कौशिको मुदितोऽभवत् ॥
प्रतिकृत्य यथाकामं शत्रूणां शत्रुसूदनः ।

वह शत्रुओंका संहार करनेवाला उलूक उन कौओंका वध करके अपने शत्रुओंसे इच्छानुसार भरपूर बदला लेकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ४३½ ॥

तद् दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतं निशि ॥ ४४ ॥
तद्भावकृतसंकल्पो द्रौणिरेकोऽन्वचिन्तयत् ।

रात्रिमें उल्लूके द्वारा किये गये उस कपटपूर्ण क्रूर कर्मको देखकर स्वयं भी वैसा ही करनेका संकल्प लेकर अश्वत्थामा अकेला ही विचार करने लगा—॥ ४४½ ॥

उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे ॥ ४५ ॥
शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तः कालश्च मे मतः ।

'इस पक्षीने युद्धमें क्या करना चाहिये, इसका उपदेश मुझे दे दिया । मैं समझता हूँ कि मेरे लिये इसी प्रकार शत्रुओंके संहार करनेका समय प्राप्त हुआ है ॥ ४५½ ॥

नाद्य शक्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ४६ ॥
बलवन्तः कृतोत्साहाः प्राप्तलक्ष्याः प्रहारिणः ।

'पाण्डव इस समय विजयसे उल्लसित हो रहे हैं। वे बलवान्, उत्साही और प्रहार करनेमें कुशल हैं। उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हो गया है। ऐसी अवस्थामें आज मैं अपनी शक्तिसे उनका वध नहीं कर सकता ॥ ४६½ ॥

राज्ञः सकाशात् तेषां तु प्रतिज्ञातो वधो मया ॥ ४७ ॥
पतङ्गाग्निसमां वृत्तिमास्थायात्मविनाशिनीम् ।
न्यायतो युध्यमानस्य प्राणत्यागो न संशयः ॥ ४८ ॥

'इधर मैंने राजा दुर्योधनके समीप पाण्डवोंके वधकी प्रतिज्ञा कर ली है। परंतु यह कार्य वैसा ही है, जैसा पतिंगोंका आगमें कूद पड़ना। मैंने जिस वृत्तिका आश्रय लेकर पूर्वोक्त प्रतिज्ञा की है, वह मेरा ही विनाश करनेवाली है। इसमें संदेह नहीं कि यदि मैं न्यायके अनुसार युद्ध करूँगा तो मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा ॥ ४७-४८ ॥

छद्मना च भवेत् सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान् ।
तत्र संशयितादर्थाद् योऽर्थो निःसंशयो भवेत्॥ ४९ ॥
तं जना बहु मन्यन्ते ये च शास्त्रविशारदाः ।

'यदि छलसे काम लूँ तो अवश्य मेरे अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो सकती है। शत्रुओंका महान् संहार भी तभी सम्भव होगा। जहाँ सिद्धि मिलनेमें संदेह हो, उसकी अपेक्षा उस उपायका अवलम्बन करना उत्तम है, जिसमें संशयके लिये स्थान न हो। साधारण लोग तथा शास्त्रज्ञ पुरुष भी उसीका अधिक आदर करते हैं ॥ ४९½ ॥

यच्चाप्यत्र भवेद् वाच्यं गर्हितं लोकनिन्दितम्॥ ५० ॥
कर्तव्यं तन्मनुष्येण क्षत्रधर्मेण वर्तता ।

'इस लोकमें जिस कार्यको गर्हणीय समझा जाता हो, जिसकी सब लोग भरपेट निन्दा करते हों, वह भी क्षत्रियधर्मके अनुसार बर्ताव करनेवाले मनुष्यके लिये कर्तव्य माना गया है ॥ ५०½ ॥

निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे ॥ ५१ ॥
सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः ।

'अपवित्र अन्तःकरणवाले पाण्डवोंने भी तो पद-पदपर ऐसे कार्य किये हैं, जो सब-के-सब निन्दा और घृणाके योग्य रहे हैं। उनके द्वारा भी अनेक कपटपूर्ण कर्म किये ही गये हैं॥

अस्मिन्नर्थे पुरा गीता श्रूयन्ते धर्मचिन्तकैः ॥ ५२ ॥
श्लोका न्यायमवेक्षद्भिस्तत्त्वार्थास्तत्त्वदर्शिभिः ।

'इस विषयमें न्यायपर दृष्टि रखनेवाले धर्मचिन्तक एवं तत्त्वदर्शी पुरुषोंने प्राचीन कालमें ऐसे श्लोकोंका गान किया है, जो तात्त्विक अर्थका प्रतिपादन करनेवाले हैं। वे श्लोक इस प्रकार सुने जाते हैं—॥ ५२½ ॥

परिश्रान्ते विदीर्णे वा भुञ्जाने वापि शत्रुभिः ॥ ५३ ॥
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्तव्यं रिपोर्बलम् ।

''शत्रुओंकी सेना यदि बहुत थक गयी हो, तितर-बितर हो गयी हो, भोजन कर रही हो, कहीं जा रही हो अथवा किसी स्थानविशेषमें प्रवेश कर रही हो तो भी विपक्षियोंको उसपर प्रहार करना ही चाहिये ॥ ५३½ ॥

निद्रार्तमर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम् ॥ ५४ ॥
भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद् भवेत् ।

''जो सेना आधी रातके समय नींदमें अचेत पड़ी हो, जिसका नायक नष्ट हो गया हो, जिसके योद्धाओंमें फूट हो गयी हो और जो दुविधेमें पड़ गयी हो, उसपर भी शत्रुको अवश्य प्रहार करना चाहिये'' ॥ ५४½ ॥

इत्येवं निश्चयं चक्रे सुप्तानां निशि मारणे ॥ ५५ ॥
पाण्डूनां सह पञ्चालैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।

इस प्रकार विचार करके प्रतापी द्रोणपुत्रने रातको सोते समय पाञ्चालोंसहित पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय किया ॥

स क्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः ॥ ५६ ॥
सुप्तौ प्राबोधयत् तौ तु मातुलं भोजमेव च ।

क्रूरतापूर्ण बुद्धिका आश्रय ले बारंबार उपर्युक्त निश्चय करके अश्वत्थामाने सोये हुए अपने मामा कृपाचार्यको तथा भोजवंशी कृतवर्माको भी जगाया ॥ ५६½ ॥

तौ प्रबुद्धौ महात्मानौ कृपभोजौ महाबलौ ॥ ५७ ॥
नोत्तरं प्रतिपद्येतां तत्र युक्तं ह्रिया वृतौ ।

जागनेपर महामनस्वी महाबली कृपाचार्य और कृतवर्माने जब अश्वत्थामाका निश्चय सुना, तब वे लज्जासे गड़ गये और उन्हें कोई उचित उत्तर नहीं सूझा ॥ ५७½ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पविह्वलमब्रवीत् ॥ ५८ ॥
हतो दुर्योधनो राजा एकवीरो महाबलः ।
यस्यार्थे वैरमस्माभिरासक्तं पाण्डवैः सह ॥ ५९ ॥

तब अश्वत्थामा दो घड़ीतक चिन्तामग्न रहकर अश्रुगद्गद वाणीमें इस प्रकार बोला—'संसारका अद्वितीय वीर महाबली राजा दुर्योधन मारा गया, जिसके लिये हमलोगोंने पाण्डवोंके साथ वैर बाँध रक्खा था ॥ ५८-५९ ॥

एकाकी बहुभिः क्षुद्रैराहवे शुद्धविक्रमः ।
पातितो भीमसेनेन एकादशचमूपतिः ॥ ६० ॥

'जो किसी दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका स्वामी था, वह राजा दुर्योधन विशुद्ध पराक्रमका परिचय देता हुआ अकेला युद्ध कर रहा था; किंतु बहुत-से नीच पुरुषोंने मिलकर युद्धस्थलमें उसे भीमसेनके द्वारा धराशायी करा दिया ॥

वृकोदरेण क्षुद्रेण सुनृशंसमिदं कृतम् ।
मूर्धाभिषिक्तस्य शिरः पादेन परिमृद्नता ॥ ६१ ॥

'एक मूर्धाभिषिक्त सम्राट्के मस्तकपर लात मारते हुए नीच भीमसेनने यह बड़ा ही क्रूरतापूर्ण कार्य कर डाला है ॥

विनर्दन्ति च पञ्चालाः क्ष्वेलन्ति च हसन्ति च ।
धमन्ति शङ्खाञ्शतशो हृष्टा घ्नन्ति च दुन्दुभीन्॥ ६२ ॥

'पाञ्चालयोद्धा हर्षमें भरकर सिंहनाद करते, हल्ला मचाते, हँसते, सैकड़ों शङ्ख बजाते और डंके पीटते हैं ॥ ६२ ॥

वादित्रघोषस्तुमुलो विमिश्रः शङ्खनिःस्वनैः ।
अनिलेनेरितो घोरो दिशः पूरयतीव ह ॥ ६३ ॥

'शङ्खध्वनिसे मिला हुआ नाना प्रकारके वाद्योंका गम्भीर एवं भयंकर घोष वायुसे प्रेरित हो सम्पूर्ण दिशाओंको भरता-सा जान पड़ता है ॥ ६३ ॥

अश्वानां हेषमाणानां गजानां चैव बृंहताम् ।
सिंहनादश्च शूराणां श्रूयते सुमहानयम् ॥ ६४ ॥

'हींसते हुए घोड़ों और चिग्घाड़ते हुए हाथियोंकी आवाज-के साथ शूरवीरोंका यह महान् सिंहनाद सुनायी दे रहा है ॥

दिशं प्राचीं समाश्रित्य हृष्टानां गच्छतां भृशम् ।
रथनेमिस्वनाश्चैव श्रूयन्ते लोमहर्षणाः ॥ ६५ ॥

'हर्षमें भरकर पूर्व दिशाकी ओर वेगपूर्वक जाते हुए पाण्डव-योद्धाओंके रथोंके पहियोंके ये रोमाञ्चकारी शब्द कानोंमें पड़ रहे हैं ॥ ६५ ॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां यदिदं कदनं कृतम् ।
वयमेव त्रयः शिष्टा अस्मिन् महति वैशसे ॥ ६६ ॥

'हाय ! पाण्डवोंने धृतराष्ट्रके पुत्रों और सैनिकोंका जो यह विनाश किया है, इस महान् संहारसे हम तीन ही बच पाये हैं ॥ ६६ ॥

केचिन्नागशतप्राणाः केचित् सर्वास्त्रकोविदाः ।
निहताः पाण्डवेयैस्ते मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ६७ ॥

'कितने ही वीर सौ-सौ हाथियोंके बराबर बलशाली थे और कितने ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी संचालन-कलामें कुशल थे; किंतु पाण्डवोंने उन सबको मार गिराया। मैं इसे समय-का ही फेर समझता हूँ ॥ ६७ ॥

एवमेतेन भाव्यं हि नूनं कार्येण तत्त्वतः ।
यथा ह्यस्येदृशी निष्ठा कृतकार्येऽपि दुष्करे ॥ ६८ ॥

'निश्चय ही इस कार्यसे ठीक ऐसा ही परिणाम होनेवाला था। हमलोगोंके द्वारा अत्यन्त दुष्कर कार्य किया गया तो भी इस युद्धका अन्तिम फल इस रूपमें प्रकट हुआ ॥ ६८ ॥

भवतोस्तु यदि प्रज्ञा न मोहादपनीयते ।
व्यापन्नेऽस्मिन् महत्यर्थे यन्नः श्रेयस्तदुच्यताम् ॥ ६९ ॥

'यदि आप दोनोंकी बुद्धि मोहसे नष्ट न हो गयी हो तो इस महान् संकटके समय अपने बिगड़े हुए कार्यको बनाने-के उद्देश्यसे हमारे लिये क्या करना श्रेष्ठ होगा? यह बताइये'॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी मन्त्रणाविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

कृपाचार्यका अश्वत्थामाको दैवकी प्रबलता बताते हुए कर्तव्यके विषयमें सत्पुरुषोंसे सलाह लेनेकी प्रेरणा देना

कृप उवाच

श्रुतं ते वचनं सर्वं यद् यदुक्तं त्वया विभो ।
ममापि तु वचः किंचिच्छृणुष्वाद्य महाभुज ॥ १ ॥

तब कृपाचार्यने कहा—शक्तिशाली महाबाहो ! तुमने जो-जो बात कही है, वह सब मैंने सुन ली। अब कुछ मेरी भी बात सुनो ॥ १ ॥

आबद्धा मानुषाः सर्वे निबद्धाः कर्मणोर्द्वयोः ।
दैवे पुरुषकारे च परं ताभ्यां न विद्यते ॥ २ ॥

सभी मनुष्य प्रारब्ध और पुरुषार्थ दो प्रकारके कर्मोंसे बँधे हुए हैं। इन दोके सिवा दूसरा कुछ नहीं है ॥ २ ॥

न हि दैवेन सिध्यन्ति कार्याण्येकेन सत्तम ।
न चापि कर्मणैकेन द्वाभ्यां सिद्धस्तु योगतः ॥ ३ ॥

सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामन् ! केवल दैव या प्रारब्धसे अथवा अकेले पुरुषार्थसे भी कार्योंकी सिद्धि नहीं होती है। दोनोंके संयोगसे ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

ताभ्यामुभाभ्यां सर्वार्था निबद्धा अधमोत्तमाः ।
प्रवृत्ताश्चैव दृश्यन्ते निवृत्ताश्चैव सर्वशः ॥ ४ ॥

उन दोनोंसे ही उत्तम-अधम सभी कार्य बँधे हुए हैं। उन्हींसे प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी कार्य होते देखे जाते हैं ॥ ४ ॥

पर्जन्यः पर्वते वर्षन् किन्नु साधयते फलम् ।
कृष्टे क्षेत्रे तथा वर्षन् किन्न साधयते फलम् ॥ ५ ॥

बादल पर्वतपर वर्षा करके किस फलकी सिद्धि करता है ? वही यदि जोते हुए खेतमें वर्षा करे तो वह कौन-सा फल नहीं उत्पन्न कर सकता ? ॥ ५ ॥

उत्थानं चाप्यदैवस्य ह्यनुत्थानं च दैवतम् ।
व्यर्थं भवति सर्वत्र पूर्वस्तत्र विनिश्चयः ॥ ६ ॥

दैवरहित पुरुषका पुरुषार्थ व्यर्थ है और पुरुषार्थशून्य दैव भी व्यर्थ हो जाता है। सर्वत्र ये दो ही पक्ष उठाये जाते हैं। इन दोनोंमें पहला पक्ष ही सिद्धान्तभूत एवं श्रेष्ठ है (अर्थात् दैवके सहयोगके बिना पुरुषार्थ नहीं काम देता है)॥

सुवृष्टे च यथा देवे सम्यक् क्षेत्रे च कर्षिते ।
बीजं महागुणं भूयात् तथा सिद्धिर्हि मानुषी ॥ ७ ॥

जैसे मेघने अच्छी तरह वर्षा की हो और खेतको भी भलीभाँति जोता गया हो, तब उसमें बोया हुआ बीज अधिक लाभदायक हो सकता है। इसी प्रकार मनुष्योंकी सारी सिद्धि दैव और पुरुषार्थके सहयोगपर ही अवलम्बित है ॥ ७ ॥

तयोर्दैवं विनिश्चित्य स्वयं चैव प्रवर्तते ।
प्राज्ञाः पुरुषकारेषु वर्तन्ते दाक्ष्यमाश्रिताः ॥ ८ ॥

इन दोनोंमें दैव बलवान् है। वह स्वयं ही निश्चय करके पुरुषार्थकी अपेक्षा किये बिना ही फल-साधनमें प्रवृत्त हो जाता है, तथापि विद्वान् पुरुष कुशलताका आश्रय ले पुरुषार्थ-में ही प्रवृत्त होते हैं ॥ ८ ॥

ताभ्यां सर्वे हि कार्यार्था मनुष्याणां नरर्षभ ।
विचेष्टन्तः स्म दृश्यन्ते निवृत्तास्तु तथैव च ॥ ९ ॥

नरश्रेष्ठ ! मनुष्योंके प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी सारे कार्य दैव और पुरुषार्थ दोनोंसे ही सिद्ध होते देखे जाते हैं ॥

कृतः पुरुषकारश्च सोऽपि दैवेन सिध्यति ।
तथास्य कर्मणः कर्तुरभिनिर्वर्तते फलम् ॥१०॥

किया हुआ पुरुषार्थ भी दैवके सहयोगसे ही सफल होता है तथा दैवकी अनुकूलतासे ही कर्ताको उसके कर्मका फल प्राप्त होता है ॥ १० ॥

उत्थानं च मनुष्याणां दक्षाणां दैववर्जितम् ।
अफलं दृश्यते लोके सम्यगप्युपपादितम् ॥११॥

चतुर मनुष्योंद्वारा अच्छी तरह सम्पादित किया हुआ पुरुषार्थ भी यदि दैवके सहयोगसे वञ्चित है तो वह संसारमें निष्फल होता दिखायी देता है ॥ ११ ॥

तत्रालसा मनुष्याणां ये भवन्त्यमनस्विनः ।
उत्थानं ते विगर्हन्ति प्राज्ञानां तन्न रोचते ॥१२॥

मनुष्योंमें जो आलसी और मनपर काबू न रखनेवाले होते हैं, वे पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं । परंतु विद्वानोंको यह बात अच्छी नहीं लगती॥ १२ ॥

प्रायशो हि कृतं कर्म नाफलं दृश्यते भुवि ।
अकृत्वा च पुनर्दुःखं कर्म पश्येन्महाफलम् ॥१३॥

प्रायः किया हुआ कर्म इस भूतलपर कभी निष्फल होता नहीं देखा जाता है; परंतु कर्म न करनेसे दुःखकी प्राप्ति ही देखनेमें आती है; अतः कर्मको महान् फलदायक समझना चाहिये ॥ १३ ॥

चेष्टामकुर्वल्लँभते यदि किंचिद् यदृच्छया ।
यो वा न लभते कृत्वा दुर्दर्शौ तावुभावपि ॥१४॥

यदि कोई पुरुषार्थ न करके दैवेच्छासे ही कुछ पा जाता है अथवा जो पुरुषार्थ करके भी कुछ नहीं पाता, इन दोनों प्रकारके मनुष्योंका मिलना बहुत कठिन है ॥ १४ ॥

शक्नोति जीवितुं दक्षो नालसः सुखमेधते ।
दृश्यन्ते जीवलोकेऽस्मिन् दक्षाः प्रायो हितैषिणः॥१५॥

पुरुषार्थमें लगा हुआ दक्ष पुरुष सुखसे जीवन-निर्वाह कर सकता है; परंतु आलसी मनुष्य कभी सुखी नहीं होता है । इस जीव-जगत्में प्रायः तत्परतापूर्वक कर्म करनेवाले ही अपना हित साधन करते देखे जाते हैं ॥ १५ ॥

यदि दक्षः समारम्भात् कर्मणो नाश्नुते फलम् ।
नास्य वाच्यं भवेत् किंचिल्लब्धव्यं वाधिगच्छति॥१६॥

यदि कार्य-दक्ष मनुष्य कर्मका आरम्भ करके भी उसका कोई फल नहीं पाता है तो उसके लिये उसकी कोई निन्दा नहीं की जाती अथवा वह अपने प्राप्तव्य लक्ष्यको पा ही लेता है ॥ १६ ॥

अकृत्वा कर्म यो लोके फलं विन्दति धिष्ठितः ।
स तु वक्तव्यतां याति द्वेष्यो भवति भूयशः ॥ १७ ॥

परंतु जो इस जगत्में कोई काम न करके बैठा-बैठा फल भोगता है; वह प्रायः निन्दित होता है और दूसरोंके द्वेषका पात्र बन जाता है ॥ १७ ॥

एवमेतदनादृत्य वर्तते यस्त्वतोऽन्यथा ।
स करोत्यात्मनोऽनर्थानेष बुद्धिमतां नयः ॥ १८ ॥

इस प्रकार जो पुरुष इस मतका अनादर करके इसके विपरीत बर्ताव करता है अर्थात् जो दैव और पुरुषार्थ दोनों-के सहयोगको न मानकर केवल एकके भरोसे ही बैठा रहता है, वह अपना ही अनर्थ करता है, यही बुद्धिमानोंकी नीति है ॥ १८ ॥

हीनं पुरुषकारेण यदि दैवेन वा पुनः ।
कारणाभ्यामथैताभ्यामुत्थानमफलं भवेत् ॥ १९ ॥

पुरुषार्थहीन दैव अथवा दैवहीन पुरुषार्थ—इन दो ही कारणोंसे मनुष्यका उद्योग निष्फल होता है ॥ १९ ॥

हीनं पुरुषकारेण कर्म त्विह न सिद्ध्यति ।
दैवतेभ्यो नमस्कृत्य यस्त्वर्थान् सम्यगीहते ॥ २० ॥
दक्षो दाक्षिण्यसम्पन्नो न स मोघैर्विहन्यते ।

पुरुषार्थके बिना तो यहाँ कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता । जो दैवको मस्तक झुकाकर सभी कार्योंके लिये भली-भाँति चेष्टा करता है, वह दक्ष एवं उदार पुरुष असफलताओं-का शिकार नहीं होता ॥ २०½ ॥

सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते ॥ २१ ॥
आपृच्छति च यच्छ्रेयः करोति च हितं वचः ।

यह भलीभाँति चेष्टा उसीकी मानी जाती है जो बड़े-बूढ़ों-की सेवा करता है, उनसे अपने कल्याणकी बात पूछता है और उनके बताये हुए हितकारक वचनोंका पालन करता है ॥ २१½ ॥

उत्थायोत्थाय हि सदा प्रष्टव्या वृद्धसम्मताः ॥ २२ ॥
ते स्म योगे परं मूलं तन्मूला सिद्धिरुच्यते ।

प्रतिदिन सबेरे उठ-उठकर वृद्धजनोंद्वारा सम्मानित पुरुषोंसे अपने हितकी बात पूछनी चाहिये; क्योंकि वे अप्राप्तकी प्राप्ति करानेवाले उपायके मुख्य हेतु हैं । उनका बताया हुआ वह उपाय ही सिद्धिका मूल कारण कहा जाता है ॥ २२½ ॥

वृद्धानां वचनं श्रुत्वा योऽभ्युत्थानं प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥
उत्थानस्य फलं सम्यक् तदा स लभतेऽचिरात् ।

जो वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर उसके अनुसार कार्य आरम्भ करता है, वह उस कार्यका उत्तम फल शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥ २३½ ॥

रागात् क्रोधाद् भयाल्लोभाद् योऽर्थानीहति मानवः॥२४॥
अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः ।

अपने मनको वशमें न रखते हुए दूसरोंकी अवहेलना करनेवाला जो मानव राग, क्रोध, भय और लोभसे किसी कार्यकी सिद्धिके लिये चेष्टा करता है, वह बहुत जल्दी अपने ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २४½ ॥

सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥ २५ ॥

असमर्थ्य समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः ।
हितबुद्धीननादृत्य सम्मन्त्र्यासाधुभिः सह ॥ २६ ॥
वार्यमाणोऽकरोद् वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः ।

दुर्योधन लोभी और अदूरदर्शी था। उसने मूर्खतावश न तो किसीका समर्थन प्राप्त किया और न स्वयं ही अधिक सोच-विचार किया। उसने अपना हित चाहनेवाले लोगोंका अनादर करके दुष्टोंके साथ सलाह की और सबके मना करनेपर भी अधिक गुणवान् पाण्डवोंके साथ वैर बाँध लिया ॥ २५-२६½ ॥

पूर्वमप्यतिदुःशीलो न धैर्यं कर्तुमर्हति ॥ २७ ॥
तपत्यर्थे विपन्ने हि मित्राणां न कृतं वचः ।

पहले भी वह बड़े दुष्ट स्वभावका था। धैर्य रखना तो वह जानता ही नहीं था। उसने मित्रोंकी बात नहीं मानी; इसलिये अब काम बिगड़ जानेपर पश्चात्ताप करता है ।२७½।

अनुवर्तामहे यत्तु तं वयं पापपूरुषम् ॥ २८ ॥
अस्मानप्यनयस्तस्मात् प्राप्तोऽयं दारुणो महान् ।

हमलोग जो उस पापीका अनुसरण करते हैं, इसीलिये हमें भी यह अत्यन्त दारुण अनर्थ प्राप्त हुआ है ॥ २८½ ॥

अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता ॥ २९ ॥
बुद्धिश्चिन्तयते किंचित् स्वं श्रेयो नावबुद्ध्यते ।

इस संकटसे सर्वथा संतप्त होनेके कारण मेरी बुद्धि आज बहुत सोचने-विचारनेपर भी अपने लिये किसी हितकर कार्यका निर्णय नहीं कर पाती है ॥ २९½ ॥

मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः सुहृदो जनाः ॥ ३० ॥
तत्रास्य बुद्धिर्विनयस्तत्र श्रेयश्च पश्यति ।

जब मनुष्य मोहके वशीभूत हो हिताहितका निर्णय करनेमें असमर्थ हो जाय, तब उसे अपने सुहृदोंसे सलाह लेनी चाहिये। वहीं उसे बुद्धि और विनयकी प्राप्ति हो सकती है और वहीं उसे अपने हितका साधन भी दिखायी देता है ३०½

ततोऽस्य मूलं कार्याणां बुद्ध्या निश्चित्य वै बुधाः ॥ ३१ ॥
तेऽत्र पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत् कर्तव्यं तथा भवेत् ।

पूछनेपर वे विद्वान् हितैषी अपनी बुद्धिसे उसके कार्योंके मूल कारणका निश्चय करके जैसी सलाह दें, वैसा ही उसे करना चाहिये ॥ ३१½ ॥

ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह ॥ ३२ ॥
उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिम् ।

अतः हमलोग राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी देवी तथा परम बुद्धिमान् विदुरजीके पास चलकर पूछें ॥ ३२½ ॥

ते पृष्टास्तु वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरम् ॥ ३३ ॥
तदस्माभिः पुनः कार्यमिति मे नैष्ठिकी मतिः ।

हमारे पूछनेपर वे लोग अब हमारे लिये जो श्रेयस्कर कार्य बतावें, वही हमें करना चाहिये; मेरी बुद्धिका तो यही दृढ़ निश्चय है ॥ ३३½ ॥

अनारम्भात् तु कार्याणां नार्थः सम्पद्यते क्वचित् ॥ ३४ ॥
कृते पुरुषकारे तु येषां कार्यं न सिद्ध्यति ।
दैवेनोपहतास्ते तु नात्र कार्या विचारणा ॥ ३५ ॥

कार्यको आरम्भ न करनेसे कहीं कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है; परंतु पुरुषार्थ करनेपर भी जिनका कार्य सिद्ध नहीं होता है, वे निश्चय ही दैवके मारे हुए हैं। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३४-३५ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिकृपसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामा और कृपाचार्यका संवादविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अश्वत्थामाका कृपाचार्य और कृतवर्माको उत्तर देते हुए उन्हें अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना

संजय उवाच

कृपस्य वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं शुभम् ।
अश्वत्थामा महाराज दुःखशोकसमन्वितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! कृपाचार्यका वचन धर्म और अर्थसे युक्त तथा मङ्गलकारी था। उसे सुनकर अश्वत्थामा दुःख और शोकमें डूब गया ॥ १ ॥

दह्यमानस्तु शोकेन प्रदीप्तेनाग्निना यथा ।
क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत ॥ २ ॥

उसके हृदयमें शोककी आग प्रज्वलित हो उठी। वह उससे जलने लगा और अपने मनको कठोर बनाकर कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनोंसे बोला— ॥ २ ॥

पुरुषे पुरुषे बुद्धिर्या या भवति शोभना ।
तुष्यन्ति च पृथक् सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया ॥ ३ ॥

'मामाजी! प्रत्येक मनुष्यमें जो पृथक्-पृथक् बुद्धि होती है, वही उसे सुन्दर जान पड़ती है। अपनी-अपनी उसी बुद्धिसे वे सब लोग अलग-अलग संतुष्ट रहते हैं ॥ ३ ॥

सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम् ।
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति ॥ ४ ॥

'सभी लोग अपने आपको अधिक बुद्धिमान् समझते हैं। सबको अपनी ही बुद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है और सब लोग अपनी ही बुद्धिकी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

सर्वस्य हि स्वका प्रज्ञा साधुवादे प्रतिष्ठिता ।
परबुद्धिं च निन्दन्ति स्वां प्रशंसन्ति चासकृत् ॥ ५ ॥

'सबकी दृष्टिमें अपनी ही बुद्धि धन्यवाद पानेके योग्य ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित जान पड़ती है। सब लोग दूसरोंकी बुद्धिकी निन्दा और अपनी बुद्धिकी बारंबार सराहना करते हैं ॥ ५ ॥

कारणान्तरयोगेन योगे येषां समागतिः ।

अन्योन्येन च तुष्यन्ति बहु मन्यन्ति चासकृत् ॥ ६ ॥

'यदि किन्हीं दूसरे कारणोंके संयोगसे एक समुदायमें जिनके-जिनके विचार परस्पर मिल जाते हैं, वे एक दूसरेसे संतुष्ट होते हैं और बारंबार एक दूसरेके प्रति अधिक सम्मान प्रकट करते हैं ॥ ६ ॥

तस्यैव तु मनुष्यस्य सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
कालयोगे विपर्यासं प्राप्यान्योन्यं विपद्यते ॥ ७ ॥

'किंतु समयके फेरसे उसी मनुष्यकी वही-वही बुद्धि विपरीत होकर परस्पर विरुद्ध हो जाती है ॥ ७ ॥

विचित्रत्वात् तु चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः ।
चित्तवैक्लव्यमासाद्य सा सा बुद्धिः प्रजायते ॥ ८ ॥

'सभी प्राणियोंके विशेषतः मनुष्योंके चित्त एक दूसरेसे विलक्षण तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं; अतः विभिन्न घटनाओंके कारण जो चित्तमें व्याकुलता होती है, उसका आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न प्रकारकी बुद्धि पैदा हो जाती है ॥

यथा हि वैद्यः कुशलो ज्ञात्वा व्याधिं यथाविधि ।
भैषज्यं कुरुते योगात् प्रशमार्थमिति प्रभो ॥ ९ ॥
एवं कार्यस्य योगार्थं बुद्धिं कुर्वन्ति मानवाः ।
प्रज्ञया हि स्वया युक्तास्तां च निन्दन्ति मानवाः ॥ १० ॥

'प्रभो! जैसे कुशल वैद्य विधिपूर्वक रोगकी जानकारी प्राप्त करके उसकी शान्तिके लिये योग्यतानुसार औषध प्रदान करता है, इसी प्रकार मनुष्य कार्यकी सिद्धिके लिये अपनी विवेकशक्तिसे विचार करके किसी निश्चयात्मक बुद्धिका आश्रय लेते हैं; परंतु दूसरे लोग उसकी निन्दा करने लगते हैं ९-१०

अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः ।
मध्येऽन्यया जरायां तु सोऽन्यां रोचयते मतिम् ॥ ११ ॥

'मनुष्य जवानीमें किसी और ही प्रकारकी बुद्धिसे मोहित होता है, मध्यम अवस्थामें दूसरी ही बुद्धिसे वह प्रभावित होता है; किंतु वृद्धावस्थामें उसे अन्य प्रकारकी ही बुद्धि अच्छी लगने लगती है ॥ ११ ॥

व्यसनं वा महाघोरं समृद्धिं चापि तादृशीम् ।
अवाप्य पुरुषो भोज कुरुते बुद्धिवैकृतम् ॥ १२ ॥

'भोज[1]! मनुष्य जब किसी अत्यन्त घोर संकटमें पड़ जाता है अथवा उसे किसी महान् ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो जाती है, तब उस संकट और समृद्धिको पाकर उसकी बुद्धिमें क्रमशः शोक एवं हर्षरूपी विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १२ ॥

एकस्मिन्नेव पुरुषे सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
भवत्यकृतधर्मत्वात् सा तस्यैव न रोचते ॥ १३ ॥

'उस विकारके कारण एक ही पुरुषमें उसी समय भिन्न-भिन्न प्रकारकी बुद्धि (विचारधारा) उत्पन्न हो जाती है; परंतु अवसरके अनुरूप न होनेपर उसकी अपनी ही बुद्धि उसीके लिये अरुचिकर हो जाती है ॥ १३ ॥

निश्चित्य तु यथाप्रज्ञं यां मतिं साधु पश्यति ।
तया प्रकुरुते भावं सा तस्योद्योगकारिका ॥ १४ ॥

'मनुष्य अपने विवेकके अनुसार किसी निश्चयपर पहुँचकर जिस बुद्धिको अच्छा समझता है, उसीके द्वारा कार्य-सिद्धिकी चेष्टा करता है। वही बुद्धि उसके उद्योगको सफल बनानेवाली होती है ॥ १४ ॥

सर्वो हि पुरुषो भोज साध्वेतदिति निश्चितः ।
कर्तुमारभते प्रीतो मारणादिषु कर्मसु ॥ १५ ॥

'कृतवर्मन्! सभी मनुष्य 'यह अच्छा कार्य है' ऐसा निश्चय करके प्रसन्नतापूर्वक कार्य आरम्भ करते हैं और हिंसा आदि कर्मोंमें भी लग जाते हैं॥ १५ ॥

सर्वे हि बुद्धिमाज्ञाय प्रज्ञां वापि स्वकां नराः ।
चेष्टन्ते विविधां चेष्टां हितमित्येव जानते ॥ १६ ॥

'सब लोग अपनी ही बुद्धि अथवा विवेकका आश्रय लेकर तरह-तरहकी चेष्टाएँ करते हैं और उन्हें अपने लिये हितकर ही समझते हैं ॥ १६ ॥

उपजाता व्यसनजा येयमद्य मतिर्मम ।
युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीम् ॥ १७ ॥

'आज संकटमें पड़नेसे मेरे अंदर जो बुद्धि पैदा हुई है, उसे मैं आप दोनोंको बता रहा हूँ। वह मेरे शोकका विनाश करनेवाली है ॥ १७ ॥

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा कर्म तासु विधाय च ।
वर्णे वर्णे समाधत्ते ह्येकैकं गुणभाग् गुणम् ॥ १८ ॥

'गुणवान् प्रजापति ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करके उनके लिये कर्मका विधान करते हैं और प्रत्येक वर्णमें एक-एक विशेष गुणकी स्थापना कर देते हैं ॥ १८ ॥

ब्राह्मणे वेदमग्र्यं तु क्षत्रिये तेज उत्तमम् ।
दाक्ष्यं वैश्ये च शूद्रे च सर्ववर्णानुकूलताम् ॥ १९ ॥

'वे ब्राह्मणमें सर्वोत्तम वेद, क्षत्रियमें उत्तम तेज, वैश्यमें व्यापारकुशलता तथा शूद्रमें सब वर्णोंके अनुकूल चलनेकी वृत्तिको स्थापित कर देते हैं ॥ १९ ॥

अदान्तो ब्राह्मणोऽसाधुर्निस्तेजाः क्षत्रियोऽधमः ।
अदक्षो निन्द्यते वैश्यः शूद्रश्च प्रतिकूलवान् ॥ २० ॥

'मन और इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला ब्राह्मण अच्छा नहीं माना जाता। तेजोहीन क्षत्रिय अधम समझा जाता है, जो व्यापारमें कुशल नहीं है, उस वैश्यकी निन्दा की जाती है और अन्य वर्णोंके प्रतिकूल चलनेवाले शूद्रको भी निन्दनीय माना जाता है ॥ २० ॥

सोऽस्मि जातः कुले श्रेष्ठे ब्राह्मणानां सुपूजिते ।
मन्दभाग्यतयास्म्येतं क्षत्रधर्ममनुष्ठितः ॥ २१ ॥

'मैं ब्राह्मणोंके परम सम्मानित श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, तथापि दुर्भाग्यके कारण इस क्षत्रिय-धर्मका अनुष्ठान करता हूँ ॥ २१ ॥

क्षत्रधर्मं विदित्वाहं यदि ब्राह्मण्यमाश्रितः ।
प्रकुर्यां सुमहत् कर्म न मे तत् साधुसम्मतम् ॥ २२ ॥

'यदि क्षत्रियके धर्मको जानकर भी मैं ब्राह्मणत्वका सहारा लेकर कोई दूसरा महान् कर्म करने लगूँ तो सत्पुरुषोंके

१. भोजका अर्थ है भोजवंशी कृतवर्मा ।

समाजमें मेरे उस कार्यका सम्मान नहीं होगा ॥ २२ ॥

धारयंश्च धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि ॥२३ ॥

'मैं दिव्य धनुष और दिव्य अस्त्रोंको धारण करता हूँ तो भी युद्धमें अपने पिताको अन्यायपूर्वक मारा गया देखकर यदि उसका बदला न लूँ तो वीरोंकी सभामें क्या कहूँगा ? ॥

सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्ममुपास्य तम् ।
गन्तास्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महात्मनः ॥ २४ ॥

'अतः आज मैं अपनी रुचिके अनुसार उस क्षत्रियधर्मका सहारा लेकर अपने महात्मा पिता तथा राजा दुर्योधनके पथका अनुसरण करूँगा ॥ २४ ॥

अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विश्वस्ता जितकाशिनः ।
विमुक्तयुग्यकवचा हर्षेण च समन्विताः ॥ २५ ॥
जयं मत्वाऽऽत्मनश्चैव श्रान्ता व्यायामकर्शिताः ।

'आज अपनी जीत हुई जान विजयसे सुशोभित होनेवाले पाञ्चाल योद्धा बड़े हर्षमें भरकर कवच उतार, जूओंमें जुते हुए घोड़ोंको खोलकर बेखटके सो रहे होंगे । वे थके तो होंगे ही, विशेष परिश्रमके कारण चूर-चूर हो गये होंगे २५½

तेषां निशि प्रसुप्तानां सुस्थानां शिबिरे स्वके ॥ २६ ॥
अवस्कन्दं करिष्यामि शिबिरस्याद्य दुष्करम् ।

'रातमें सुस्थिर चित्तसे सोये हुए उन पाञ्चालोंके अपने ही शिबिरमें घुसकर मैं उन सबका संहार कर डालूँगा । समूचे शिबिरका ऐसा विनाश करूँगा जो दूसरोंके लिये दुष्कर है ॥ २६½ ॥

तानवस्कन्द्य शिबिरे प्रेतभूतविचेतसः ॥ २७ ॥
सूदयिष्यामि विक्रम्य मघवानिव दानवान् ।

'जैसे इन्द्र दानवोंपर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार मैं भी शिबिरमें मुर्दोंके समान अचेत पड़े हुए पाञ्चालोंकी छातीपर चढ़कर उन्हें पराक्रमपूर्वक मार डालूँगा ॥ २७½ ॥

अद्य तान् सहितान् सर्वान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ॥२८॥
सूदयिष्यामि विक्रम्य कक्षं दीप्त इवानलः ।
निहत्य चैव पञ्चालाञ्शान्तिं लब्धास्मि सत्तम॥२९॥

'साधुशिरोमणे ! जैसे जलती हुई आग सूखे जंगल या तिनकोंकी राशिको जला डालती है, उसी प्रकार आज मैं एक साथ सोये हुए धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाञ्चालोंपर आक्रमण करके उन्हें मौतके घाट उतार दूँगा । उनका संहार कर लेनेपर ही मुझे शान्ति मिलेगी ॥ २८-२९ ॥

पञ्चालेषु भविष्यामि सूदयन्नद्य संयुगे ।
पिनाकपाणिः संक्रुद्धः स्वयं रुद्रः पशुष्विव ॥ ३० ॥

'जैसे प्रलयके समय क्रोधमें भरे हुए साक्षात् पिनाकधारी रुद्र समस्त पशुओं (प्राणियों) पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार आज युद्धमें मैं पाञ्चालोंका विनाश करता हुआ उनके लिये कालरूप हो जाऊँगा ॥ ३० ॥

अद्याहं सर्वपञ्चालान् निहत्य च निकृत्य च ।
अर्दयिष्यामि संहृष्टो रणे पाण्डुसुतांस्तथा ॥ ३१ ॥

'आज मैं रणभूमिमें समस्त पाञ्चालोंको मारकर उनके टुकड़े-टुकड़े करके हर्ष और उत्साहसे सम्पन्न हो पाण्डवोंको भी कुचल डालूँगा ॥ ३१ ॥

अद्याहं सर्वपञ्चालैः कृत्वा भूमिं शरीरिणीम् ।
प्रहृत्यैकैकशस्तेषु भविष्याम्यनृणः पितुः ॥ ३२ ॥

'आज समस्त पाञ्चालोंके शरीरोंसे रणभूमिको शरीरधारिणी बनाकर एक-एक पाञ्चालपर भरपूर प्रहार करके मैं अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा ॥ ३२ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भीष्मसैन्धवयोरपि ।
गमयिष्यामि पञ्चालान् पदवीमद्य दुर्गमाम् ॥ ३३ ॥

'आज पाञ्चालोंको दुर्योधन, कर्ण, भीष्म तथा जयद्रथके दुर्गम मार्गपर भेजकर छोड़ूँगा ॥ ३३ ॥

अद्य पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नस्य वै निशि ।
नचिरात् प्रमथिष्यामि पशोरिव शिरो बलात्॥ ३४ ॥

'आज रातमें मैं शीघ्र ही पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नके सिरको पशुके मस्तककी भाँति बलपूर्वक मरोड़ डालूँगा ॥ ३४ ॥

अद्य पाञ्चालपाण्डूनां शयितानात्मजान् निशि ।
खड्गेन निशितेनाजौ प्रमथिष्यामि गौतम ॥ ३५ ॥

'गौतम ! आज रातके युद्धमें सोये हुए पाञ्चालों और पाण्डवोंके पुत्रोंको भी मैं अपनी तीखी तलवारसे टूक-टूक कर दूँगा ॥ ३५ ॥

अद्य पाञ्चालसेनां तां निहत्य निशि सौप्तिके ।
कृतकृत्यः सुखी चैव भविष्यामि महामते ॥ ३६ ॥

'महामते ! आज रातको सोते समय उस पाञ्चालसेनाका वध करके मैं कृतकृत्य एवं सुखी हो जाऊँगा' ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी मन्त्रणाविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

कृपाचार्यका कल प्रातःकाल युद्ध करनेकी सलाह देना और अश्वत्थामाका इसी रात्रिमें सोते हुओंको मारनेका आग्रह प्रकट करना

कृप उवाच

दिष्ट्या ते प्रतिकर्तव्ये मतिर्जातेयमच्युत ।
न त्वां वारयितुं शक्तो वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥ १ ॥

कृपाचार्य बोले—तात ! तुम अपनी टेकसे टलनेवाले नहीं हो, सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारे मनमें बदला लेनेका दृढ़ विचार उत्पन्न हुआ । तुम्हें साक्षात् वज्रधारी

इन्द्र भी इस कार्यसे रोक नहीं सकते ॥ १ ॥

अनुयास्यावहे त्वां तु प्रभाते सहितावुभौ।
अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्तकवचध्वजः ॥ २ ॥

आज रातमें कवच और ध्वजा खोलकर विश्राम करो। कल सबेरे हम दोनों एक साथ होकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥२॥

अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः।
परानभिमुखं यान्तं रथावास्थाय दंशितौ ॥ ३ ॥

जब तुम शत्रुओंका सामना करनेके लिये आगे बढ़ोगे, उस समय मैं और सात्वतवंशी कृतवर्मा दोनों ही कवच धारण करके रथोंपर आरूढ़ हो तुम्हारे साथ चलेंगे ॥ ३ ॥

आवाभ्यां सहितः शत्रूञ्श्वो निहन्ता समागमे।
विक्रम्य रथिनां श्रेष्ठ पञ्चालान् सपदानुगान्॥ ४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ वीर ! कल सबेरेके संग्राममें हम दोनोंके साथ रहकर तुम अपने शत्रु पाञ्चालों और उनके सेवकोंको बलपूर्वक मार डालना ॥ ४ ॥

शक्तस्त्वमसि विक्रम्य विश्रमस्व निशामिमाम्।
चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम् ॥ ५ ॥

तात ! तुम पराक्रम दिखाकर शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ हो, अतः इस रातमें विश्राम कर लो। तुम्हें जागते हुए बहुत देर हो गयी है, अब इस रातमें सो लो ॥ ५ ॥

विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद।
समेत्य समरे शत्रून् वधिष्यसि न संशयः ॥ ६ ॥

मानद ! थकावट दूर करके नींद पूरी कर लेनेसे तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो जायगा। फिर तुम समरभूमिमें जाकर शत्रुओं-का वध कर सकोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

न हि त्वां रथिनां श्रेष्ठं प्रगृहीतवरायुधम्।
जेतुमुत्सहते शश्वदपि देवेषु वासवः ॥ ७ ॥

तुम रथियोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने अपने हाथमें उत्तम आयुध ले रक्खा है। तुम्हें देवताओंके राजा इन्द्र भी कभी जीतनेका साहस नहीं कर सकते हैं ॥ ७ ॥

कृपेण सहितं यान्तं गुप्तं च कृतवर्मणा।
को द्रौणिं युधि संरब्धं योधयेदपि देवराट् ॥ ८ ॥

जब कृतवर्मासे सुरक्षित हो द्रोणपुत्र अश्वत्थामा मुझ कृपाचार्यके साथ कुपित होकर युद्धके लिये प्रस्थान करेगा, उस समय कौन वीर, वह देवराज इन्द्र ही क्यों न हो, उसका सामना कर सकता है ? ॥ ८ ॥

ते वयं निशि विश्रान्ता विनिद्रा विगतज्वराः।
प्रभातायां रजन्यां वै निहनिष्याम शात्रवान् ॥ ९ ॥

अतः हमलोग रातमें विश्राम करके निद्रारहित और विगतज्वर हो प्रातःकाल अपने शत्रुओंका संहार करेंगे ॥९॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि मम चैव न संशयः।
सात्वतोऽपि महेष्वासो नित्यं युद्धेषु कोविदः ॥१०॥

इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे और मेरे पास भी दिव्यास्त्र हैं तथा महाधनुर्धर कृतवर्मा भी युद्ध करनेकी कलामें सदा ही कुशल हैं ॥ १० ॥

ते वयं सहितास्तात सर्वाञ्शत्रून् समागतान्।
प्रसह्य समरे हत्वा प्रीतिं प्राप्स्याम पुष्कलाम् ॥ ११ ॥

तात ! हम सब लोग एक साथ होकर समराङ्गणमें सामने आये हुए समस्त शत्रुओंका संहार करके अत्यन्त हर्ष-का अनुभव करेंगे ॥ ११ ॥

विश्रमस्व त्वमव्यग्रः स्वप चेमां निशां सुखम्।
अहं च कृतवर्मा च त्वां प्रयान्तं नरोत्तमम् ॥ १२ ॥
अनुयास्याव सहितौ धन्विनौ परतापनौ।
रथिनं त्वरया यान्तं रथमास्थाय दंशितौ ॥ १३ ॥

तुम व्यग्रता छोड़कर विश्राम करो और इस रातमें सुखपूर्वक सो लो। कल सबेरे युद्धके लिये प्रस्थान करते समय तुम-जैसे नरश्रेष्ठ वीरके पीछे शत्रुओंको संताप देनेवाले हम और कृतवर्मा धनुष लेकर एक साथ चलेंगे। बड़ी उतावलीके साथ आगे बढ़ते हुए रथी अश्वत्थामाके साथ हम दोनों भी कवच धारण करके रथपर आरूढ़ हो यात्रा करेंगे ॥ १२-१३ ॥

स गत्वा शिबिरं तेषां नाम विश्राव्य चाहवे।
ततः कर्तासि शत्रूणां युध्यतां कदनं महत् ॥ १४ ॥

उस अवस्थामें शत्रुओंके शिबिरमें जाकर युद्धके लिये अपने नामकी घोषणा करके सामने आकर जूझते हुए उन शत्रुओंका बड़ा भारी संहार मचा देना ॥ १४ ॥

कृत्वा च कदनं तेषां प्रभाते विमलेऽहनि।
विहरस्व यथा शक्रः सूदयित्वा महासुरान् ॥ १५ ॥

जैसे इन्द्र बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करके सुखपूर्वक विचरते हैं, उसी प्रकार तुम भी कल प्रातःकाल निर्मल दिन निकल आनेपर उन शत्रुओंका विनाश करके इच्छानुसार विहार करो ॥ १५ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं पञ्चालानां वरूथिनीम्।
दैत्यसेनामिव क्रुद्धः सर्वदानवसूदनः ॥ १६ ॥

जैसे सम्पूर्ण दानवोंका संहार करनेवाले इन्द्र कुपित होनेपर दैत्योंकी सेनाको जीत लेते हैं, उसी प्रकार तुम भी रणभूमिमें पाञ्चालोंकी विशाल वाहिनीपर विजय पानेमें समर्थ हो ॥ १६ ॥

मया त्वां सहितं संख्ये गुप्तं च कृतवर्मणा।
न सहेत विभुः साक्षाद् वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥ १७ ॥

युद्धस्थलमें जब तुम मेरे साथ खड़े होओगे और कृत-वर्मा तुम्हारी रक्षामें लगे होंगे, उस समय हाथमें वज्र लिये हुए साक्षात् देवसम्राट् इन्द्र भी तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे ॥ १७ ॥

न चाहं समरे तात कृतवर्मा न चैव हि।
अनिर्जित्य रणे पाण्डून् न च यास्यामि कर्हिचित्॥ १८ ॥

तात ! समराङ्गणमें मैं और कृतवर्मा पाण्डवोंको परास्त किये बिना कभी पीछे नहीं हटेंगे ॥ १८ ॥

हत्वा च समरे क्रुद्धान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह।
निवर्तिष्यामहे सर्वे हता वा स्वर्गगा वयम् ॥ १९ ॥

समराङ्गणमें कुपित हुए पाञ्चालोंको पाण्डवोंसहित मारकर ही हम सब लोग पीछे हटेंगे अथवा स्वयं ही मारे जाकर स्वर्गलोककी राह लेंगे ॥ १९ ॥

सर्वोपायैः सहायास्ते प्रभाते वयमाहवे।
सत्यमेतन्महाबाहो प्रब्रवीमि तवानघ ॥ २० ॥

निष्पाप महाबाहु वीर! कल प्रातःकाल हमलोग सभी उपायोंसे युद्धमें तुम्हारे सहायक होंगे। मैं तुमसे यह सच्ची बात कह रहा हूँ ॥ २० ॥

एवमुक्तस्ततो द्रौणिर्मातुलेन हितं वचः।
अब्रवीन्मातुलं राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥

राजन्! मामाके इस प्रकार हितकारक वचन कहनेपर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने क्रोधसे लाल आँखें करके उनसे कहा—॥ २१ ॥

आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च।
अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः।
तदिदं समनुप्राप्तं पश्य मेऽद्य चतुष्टयम् ॥ २२ ॥

'मामाजी! जो मनुष्य शोकसे आतुर हो, अमर्षसे भरा हुआ हो, नाना प्रकारके कार्योंकी चिन्ता कर रहा हो अथवा किसी कामनामें आसक्त हो, उसे नींद कैसे आ सकती है? देखिये, ये चारों बातें आज मेरे ऊपर एक साथ आ पड़ी हैं ॥ २२ ॥

यस्य भागश्चतुर्थो मे स्वप्नमह्नाय नाशयेत्।
किं नाम दुःखं लोकेऽस्मिन् पितुर्वधमनुस्मरन्॥ २३ ॥
हृदयं निर्दहन्मेऽद्य रात्र्यहानि न शाम्यति।

'इन चारोंका एक चौथाई भाग जो क्रोध है, वही मेरी निद्राको तत्काल नष्ट किये देता है। अपने पिताके वधकी घटनाका बारंबार स्मरण करके इस संसारमें कौन-सा ऐसा दुःख है, जिसका मुझे अनुभव न होता हो। वह दुःखकी आग रात-दिन मेरे हृदयको जलाती हुई अबतक बुझ नहीं पा रही है ॥ २३½ ॥

यथा च निहतः पापैः पिता मम विशेषतः ॥ २४ ॥
प्रत्यक्षमपि ते सर्वं तन्मे मर्माणि कृन्तति।
कथं हि मादृशो लोके मुहूर्तमपि जीवति ॥ २५ ॥

'इन पापियोंने विशेषतः मेरे पिताजीको जिस प्रकार मारा था, वह सब आपने प्रत्यक्ष देखा है। वह घटना मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालती है। ऐसी अवस्थामें मेरे-जैसा वीर इस जगत्‌में दो घड़ी भी कैसे जीवित रह सकता है? ॥ २४-२५॥

द्रोणो हतेति यद् वाचः पञ्चालानां शृणोम्यहम्।
धृष्टद्युम्नमहत्वा तु नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २६ ॥

'द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये' यह बात जब मैं पाञ्चालोंके मुखसे सुनता आ रहा हूँ, तब धृष्टद्युम्नका वध किये बिना जीवित नहीं रह सकता ॥ २६ ॥

स मे पितुर्वधाद् वध्यः पञ्चाला ये च संगताः।
विलापो भग्नसक्थस्य यस्तु राज्ञो मया श्रुतः॥ २७ ॥
स पुनर्हृदयं कस्य क्रूरस्यापि न निर्दहेत्।

'धृष्टद्युम्न तो पिताजीका वध करनेके कारण मेरा वध्य होगा और उसके सङ्गी-साथी जो पाञ्चाल हैं, वे भी उसका साथ देनेके कारण मारे जायँगे। इधर, जिसकी जाँघें तोड़ डाली गयी हैं, उस राजा दुर्योधनका जो विलाप मैंने अपने कानों सुना है, वह किस क्रूर मनुष्यके भी हृदयको शोक-दग्ध नहीं कर देगा? ॥ २७½ ॥

कस्य ह्यकरुणस्यापि नेत्राभ्यामश्रु नाव्रजेत् ॥ २८ ॥
नृपतेर्भग्नसक्थस्य श्रुत्वा तादृग् वचः पुनः।

'टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधनकी वैसी बात पुनः सुनकर किस निष्ठुरके भी नेत्रोंसे आँसू नहीं बह चलेगा? ॥ २८½॥

यश्चायं मित्रपक्षो मे मयि जीवति निर्जितः ॥ २९ ॥
शोकं मे वर्धयत्येष वारिवेग इवार्णवम्।
एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥ ३० ॥

'मेरे जीते-जी जो यह मेरा मित्र-पक्ष परास्त हो गया, वह मेरे शोककी उसी प्रकार वृद्धि कर रहा है, जैसे जलका वेग समुद्रको बढ़ा देता है। आज मेरा मन एक ही कार्यकी ओर लगा हुआ है, फिर मुझे नींद कैसे आ सकती है और मुझे सुख भी कैसे मिल सकता है? ॥ २९-३० ॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां च तानहं परिरक्षितान्।
अविषह्यतमान् मन्ये महेन्द्रेणापि सत्तम ॥ ३१ ॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ मामाजी! पाण्डव और पाञ्चाल जब श्रीकृष्ण और अर्जुनसे सुरक्षित हों, उस दशामें मैं उन्हें देवराज इन्द्रके लिये भी अत्यन्त असह्य एवं अजेय मानता हूँ ॥३१॥

न चापि शक्तः संयन्तुं कोपमेतं समुत्थितम्।
तं न पश्यामि लोकेऽस्मिन् यो मां कोपान्निवर्तयेत्॥ ३२॥

'इस समय जो क्रोध उत्पन्न हुआ है, इसे मैं स्वयं भी रोक नहीं सकता। इस संसारमें किसी भी ऐसे पुरुषको नहीं देख रहा हूँ, जो मुझे क्रोधसे दूर हटा दे ॥ ३२ ॥

तथैव निश्चिता बुद्धिरेषा साधु मता मम।
वार्तिकैः कथ्यमानस्तु मित्राणां मे पराभवः ॥ ३३ ॥
पाण्डवानां च विजयो हृदयं दहतीव मे।

'इसी प्रकार मैंने जो अपनी बुद्धिमें शत्रुओंके संहारका यह दृढ़ निश्चय कर लिया है, यही मुझे अच्छा प्रतीत होता है। जब संदेशवाहक दूत मेरे मित्रोंकी पराजय और पाण्डवोंकी विजयका समाचार कहने लगते हैं, तब वह मेरे हृदयको दग्ध-सा कर देता है ॥ ३३½ ॥

अहं तु कदनं कृत्वा शत्रूणामद्य सौप्तिके।
ततो विश्रमिता चैव स्वप्ता च विगतज्वरः ॥ ३४ ॥

'मैं तो आज सोते समय शत्रुओंका संहार करके निश्चिन्त होनेपर ही विश्राम करूँगा और नींद लूँगा' ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी मन्त्रणाविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अश्वत्थामा और कृपाचार्यका संवाद तथा तीनोंका पाण्डवोंके शिबिरकी ओर प्रस्थान

कृप उवाच

शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः।
नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः॥ १॥

कृपाचार्य बोले—अश्वत्थामन्! मेरा विचार है कि जिस मनुष्यकी बुद्धि दुर्भावनासे युक्त है तथा जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें नहीं रखा है, वह धर्म और अर्थकी बातोंको सुननेकी इच्छा रखनेपर भी उन्हें पूर्णरूपसे समझ नहीं सकता॥ १॥

तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षते।
न च किंचन जानाति सोऽपि धर्मार्थनिश्चयम्॥ २॥

इसी प्रकार मेधावी होनेपर भी जो मनुष्य विनय नहीं सीखता, वह भी धर्म और अर्थके निर्णयको थोड़ा भी नहीं समझ पाता है॥ २॥

चिरं ह्यपि जडः शूरः पण्डितं पर्युपास्य हि।
न स धर्मान् विजानाति दर्वी सूपरसानिव॥ ३॥

जिसकी बुद्धिपर जडता छा रही हो, वह शूरवीर योद्धा दीर्घकालतक विद्वान्‌की सेवामें रहनेपर भी धर्मोंका रहस्य नहीं जान पाता। ठीक उसी तरह, जैसे करछुल दालमें डूबी रहनेपर भी उसके स्वादको नहीं जानती है॥ ३॥

मुहूर्तमपि तं प्राज्ञः पण्डितं पर्युपास्य हि।
क्षिप्रं धर्मान् विजानाति जिह्वा सूपरसानिव॥ ४॥

जैसे जिह्वा दालके स्वादको जानती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष यदि दो घड़ी भी विवेकशीलकी सेवामें रहे तो वह शीघ्र ही धर्मोंका रहस्य जान लेता है॥ ४॥

शुश्रूषुस्त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः।
जानीयादागमान् सर्वान् ग्राह्यं च न विरोधयेत्॥ ५॥

अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला मेधावी पुरुष यदि विद्वानोंकी सेवामें रहे और उनसे कुछ सुननेकी इच्छा रक्खे तो वह सम्पूर्ण शास्त्रोंको समझ लेता है तथा ग्रहण करने योग्य वस्तुका विरोध नहीं करता॥ ५॥

अनेयस्त्ववमानी यो दुरात्मा पापपूरुषः।
दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहुपापकम्॥ ६॥

परंतु जिसे सन्मार्गपर नहीं ले जाया जा सकता, जो दूसरोंकी अवहेलना करनेवाला है तथा जिसका अन्तःकरण दूषित है, यह पापात्मा पुरुष बताये हुए कल्याणकारी पथको छोड़कर बहुत-से पापकर्म करने लगता है॥ ६॥

नाथवन्तं तु सुहृदः प्रतिषेधन्ति पातकात्।
निवर्तते तु लक्ष्मीवान् नालक्ष्मीवान् निवर्तते॥ ७॥

जो सनाथ है, उसे उसके हितैषी सुहृद् पापकर्मोंसे रोकते हैं, जो भाग्यवान् है—जिसके भाग्यमें सुख भोगना बदा है, वह मना करनेपर उस पापकर्मसे रुक जाता है; परंतु जो भाग्यहीन है, वह उस दुष्कर्मसे नहीं निवृत्त होता है॥ ७॥

यथा ह्युच्चावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते।
तथैव सुहृदा शक्यो न शक्यस्त्ववसीदति॥ ८॥

जैसे मनुष्य विक्षिप्त चित्तवाले पागलको नाना प्रकारके ऊँच-नीच वचनोंद्वारा समझा-बुझाकर या डरा-धमकाकर काबूमें लाते हैं, उसी प्रकार सुहृद्‌गण भी अपने स्वजनको समझा-बुझाकर और डाँट-डपटकर वशमें रखनेकी चेष्टा करते हैं। जो वशमें आ जाता है, वह तो सुखी होता है और जो किसी तरह काबूमें नहीं आ सकता, वह दुःख भोगता है॥ ८॥

तथैव सुहृदं प्राज्ञं कुर्वाणं कर्म पापकम्।
प्राज्ञाः सम्प्रतिषेधन्ति यथाशक्ति पुनः पुनः॥ ९॥

इसी तरह विद्वान् पुरुष पापकर्ममें प्रवृत्त होनेवाले अपने बुद्धिमान् सुहृद्‌को भी यथाशक्ति बारंबार मना करते हैं॥ ९॥

स कल्याणे मनः कृत्वा नियम्यात्मानमात्मना।
कुरु मे वचनं तात येन पश्चान्न तप्यसे॥ १०॥

तात! तुम भी स्वयं ही अपने मनको काबूमें करके उसे कल्याणसाधनमें लगाकर मेरी बात मानो, जिससे तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े॥ १०॥

न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः।
तथैवापास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम्॥ ११॥
ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्युः शरणागताः।
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः॥ १२॥

जो सोये हुए हों, जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र रख दिये हों, रथ और घोड़े खोल दिये हों, 'जो मैं आपका ही हूँ' ऐसा कह रहे हों, जो शरणमें आ गये हों, जिनके बाल खुले हुए हों तथा जिनके वाहन नष्ट हो गये हों, इस लोकमें ऐसे लोगोंका वध करना धर्मकी दृष्टिसे अच्छा नहीं समझा जाता॥ ११-१२॥

अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्तकवचा विभो।
विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः॥ १३॥
यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः।
व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे॥ १४॥

प्रभो! आज रातमें समस्त पाञ्चाल कवच उतारकर निश्चिन्त हो मुर्दोंके समान अचेत सो रहे होंगे। उस अवस्थामें जो क्रूर मनुष्य उनके साथ द्रोह करेगा, वह निश्चय ही नौकारहित अगाध एवं विशाल नरकके समुद्रमें डूब जायगा॥ १३-१४॥

सर्वास्त्रविदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः।
न च ते जातु लोकेऽस्मिन् सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम्॥

संसारके सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हारी सर्वत्र ख्याति है। इस जगत्‌में अबतक कभी तुम्हारा छोटे-से-छोटा दोष भी देखनेमें नहीं आया है॥ १५॥

त्वं पुनः सूर्यसंकाशः श्वोभूत उदिते रवौ।
प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान्॥ १६॥

कल सवेरे सूर्योदय होनेपर तुम सूर्यके समान प्रकाशित हो उजालेमें युद्ध छेड़कर समस्त प्राणियोंके सामने पुनः शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना॥ १६॥

असम्भावितरूपं हि त्वयि कर्म विगर्हितम्।
शुक्ले रक्तमिव न्यस्तं भवेदिति मतिर्मम॥१७॥

जैसे सफेद वस्त्रमें लाल रंगका धब्बा लग जाय, उस प्रकार तुममें निन्दित कर्मका होना सम्भावनासे परेकी बात है, ऐसा मेरा विश्वास है॥ १७॥

अश्वत्थामोवाच

एवमेव यथाऽऽत्थ त्वं मातुलेह न संशयः।
तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः॥ १८॥

अश्वत्थामा बोला—मामाजी! आप जैसा कहते हैं, निःसंदेह वही ठीक है; परंतु पाण्डवोंने ही पहले इस धर्म-मर्यादाके सैकड़ों टुकड़े कर डाले हैं॥ १८॥

प्रत्यक्षं भूमिपालानां भवतां चापि संनिधौ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः॥ १९॥

धृष्टद्युम्नने समस्त राजाओंके सामने और आपलोगोंके निकट ही मेरे उस पिताको मार गिराया, जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र रख दिये थे॥ १९॥

कर्णश्च पतिते चक्रे रथस्य रथिनां वरः।
उत्तमे व्यसने मग्नो हतो गाण्डीवधन्वना॥ २०॥

रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको भी गाण्डीवधारी अर्जुनने उस अवस्थामें मारा था, जब कि उनके रथका पहिया गड्ढेमें गिरकर फँस गया था और इसीलिये वे भारी संकटमें पड़े हुए थे॥ २०॥

तथा शान्तनवो भीष्मो न्यस्तशस्त्रो निरायुधः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य हतो गाण्डीवधन्वना॥ २१॥

इसी प्रकार शान्तनुनन्दन भीष्म जब हथियार डालकर अस्त्रहीन हो गये, उस अवस्थामें शिखण्डीको आगे करके गाण्डीवधारी धनंजयने उनका वध किया था॥ २१॥

भूरिश्रवा महेष्वासस्तथा प्रायगतो रणे।
क्रोशतां भूमिपालानां युयुधानेन पातितः॥ २२॥

महाधनुर्धर भूरिश्रवा तो रणभूमिमें अनशन व्रत लेकर बैठ गये थे। उस अवस्थामें समस्त भूमिपाल चिल्ला-चिल्लाकर रोकते ही रह गये; परंतु सात्यकिने उन्हें मार गिराया॥ २२॥

दुर्योधनश्च भीमेन समेत्य गदया रणे।
पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः॥ २३॥

भीमसेनने भी सम्पूर्ण राजाओंके देखते-देखते रणभूमिमें गदायुद्ध करते समय दुर्योधनको अधर्मपूर्वक गिराया था॥

एकाकी बहुभिस्तत्र परिवार्य महारथैः।
अधर्मेण नरव्याघ्रो भीमसेनेन पातितः॥ २४॥

नरश्रेष्ठ राजा दुर्योधन अकेला था और बहुत-से महारथियोंने उसे वहाँ घेर रक्खा था, उस दशामें भीमसेनने उसको धराशायी किया है॥ २४॥

विलापो भग्नसक्थस्य यो मे राज्ञः परिश्रुतः।
वार्तिकाणां कथयतां स मे मर्माणि कृन्तति॥ २५॥

टूटी जाँघोंवाले राजा दुर्योधनका जो विलाप मैंने सुना है और संदेशवाहक दूतोंके मुखसे जो समाचार मुझे ज्ञात हुआ है, वह सब मेरे मर्मस्थानोंको विदीर्ण किये देता है॥ २५॥

एवं चाधार्मिकाः पापाः पञ्चाला भिन्नसेतवः।
तानेवं भिन्नमर्यादान् किं भवान् न विगर्हति॥ २६॥

इस प्रकार वे सब-के-सब पापी और अधार्मिक हैं। पाञ्चालोंने भी धर्मकी मर्यादा तोड़ डाली है। इस तरह मर्यादा भङ्ग करनेवाले उन पाण्डवों और पाञ्चालोंकी आप निन्दा क्यों नहीं करते हैं?॥ २६॥

पितृहन्तॄनहं हत्वा पञ्चालान् निशि सौप्तिके।
कामं कीटः पतङ्गो वा जन्म प्राप्य भवामि वै॥ २७॥

पिताकी हत्या करनेवाले पाञ्चालोंका रातको सोते समय वध करके मैं भले ही दूसरे जन्ममें कीट या पतङ्ग हो जाऊँ, सब कुछ स्वीकार है॥ २७॥

त्वरे चाहमनेनाद्य यदिदं मे चिकीर्षितम्।
तस्य मे त्वरमाणस्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्॥ २८॥

इस समय मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसीको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे उतावला हो रहा हूँ। इतनी उतावलीमें रहते हुए मुझे नींद कहाँ और सुख कहाँ?॥ २८॥

न स जातः पुमाँल्लोके कश्चिन्न स भविष्यति।
यो मे व्यावर्तयेदेतां वधे तेषां कृतां मतिम्॥ २९॥

इस संसारमें ऐसा कोई पुरुष न तो पैदा हुआ है और न होगा ही, जो उन पाञ्चालोंके वधके लिये किये गये मेरे इस दृढ़ निश्चयको पलट दे॥ २९॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
एकान्ते योजयित्वाश्वान् प्रायादभिमुखः परान्॥ ३०॥

संजय कहते हैं—महाराज! ऐसा कहकर प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा एकान्तमें घोड़ोंको जोतकर शत्रुओंकी ओर चल दिया॥ ३०॥

तमब्रूतां महात्मानौ भोजशारद्वतावुभौ।
किमर्थं स्यन्दनो युक्तः किं च कार्यं चिकीर्षितम्॥ ३१॥

उस समय भोजवंशी कृतवर्मा और शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य दोनों महामनस्वी वीरोंने उससे कहा—'अश्वत्थामन्! तुमने किस लिये रथको जोता है? तुम इस समय कौन-सा कार्य करना चाहते हो?॥ ३१॥

एकसार्थप्रयातौ स्वस्त्वया सह नरर्षभ।
समदुःखसुखौ चापि नावां शङ्कितुमर्हसि॥ ३२॥

'नरश्रेष्ठ! हम दोनों एक साथ तुम्हारी सहायताके लिये चले हैं। तुम्हारे दुःख-सुखमें हमारा समान भाग होगा, तुम्हें हम दोनोंपर संदेह नहीं करना चाहिये'॥ ३२॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ।
ताभ्यां तथ्यं तथाऽऽचख्यौ यदस्यात्मचिकीर्षितम् ॥

उस समय अश्वत्थामा पिताके वधका स्मरण करके रोषसे आगबबूला हो रहा था। उसके मनमें जो कुछ करनेकी इच्छा थी, वह सब उसने उन दोनोंसे ठीक ठीक कह सुनाया ॥ ३३ ॥

हत्वा शतसहस्राणि योधानां निशितैः शरैः ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ ३४ ॥

वह बोला—'मेरे पिता अपने तीखे बाणोंसे लाखों योद्धाओंका वध करके जब अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल चुके थे, उस अवस्थामें धृष्टद्युम्नने उन्हें मारा है ॥ ३४ ॥

तं तथैव हनिष्यामि न्यस्तधर्माणमद्य वै ।
पुत्रं पाञ्चालराजस्य पापं पापेन कर्मणा ॥ ३५ ॥

'अतः धर्मका परित्याग करनेवाले उस पापी पाञ्चाल-राजकुमारको भी मैं उसी प्रकार पापकर्मद्वारा ही मार डालूँगा ॥

कथं च निहतः पापः पाञ्चाल्यः पशुवन्मया ।
शस्त्रेण विजिताँल्लोकान् नाप्नुयादिति मे मतिः ॥ ३६ ॥

'मेरा ऐसा निश्चय है कि मेरे हाथसे पशुकी भाँति मारे गये पापी पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको किसी तरह भी अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा मिलनेवाले पुण्यलोकोंकी प्राप्ति न हो !! ३६ ॥

क्षिप्रं संनद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ ।
मामास्थाय प्रतीक्षेतां रथवर्यौ परंतपौ ॥ ३७ ॥

'आप दोनों रथियोंमें श्रेष्ठ और शत्रुओंको संताप देने-वाले वीर हैं। शीघ्र ही कवच बाँधकर खड्ग और धनुष लेकर रथपर बैठ जाइये तथा मेरी प्रतीक्षा कीजिये' ॥३७॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान् ।
तमन्वगात् कृपो राजन् कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३८ ॥

राजन् ! ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथपर आरूढ़ हो शत्रुओंकी ओर चल दिया। कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा भी उसीके मार्गका अनुसरण करने लगे ॥ ३८ ॥

ते प्रयाता व्यरोचन्त परानभिमुखास्त्रयः ।
हूयमाना यथा यज्ञे समिद्धा हव्यवाहनाः ॥ ३९ ॥

शत्रुओंकी ओर जाते समय वे तीनों तेजस्वी वीर यज्ञमें आहुति पाकर प्रज्वलित हुए तीन अग्नियोंकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३९ ॥

ययुश्च शिबिरं तेषां सम्प्रसुप्तजनं विभो ।
द्वारदेशं तु सम्प्राप्य द्रौणिस्तस्थौ महारथः ॥ ४० ॥

प्रभो ! वे तीनों पाण्डवों और पाञ्चालोंके उस शिबिरके पास गये, जहाँ सब लोग सो गये थे। शिबिरके द्वारपर पहुँच-कर महारथी अश्वत्थामा खड़ा हो गया ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिगमने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाका प्रयाणविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

अश्वत्थामाका शिबिर-द्वारपर एक अद्भुत पुरुषको देखकर उसपर अस्त्रोंका प्रहार करना और अस्त्रोंके अभावमें चिन्तित हो भगवान् शिवकी शरणमें जाना

धृतराष्ट्र उवाच

द्वारदेशे ततो द्रौणिमवस्थितमवेक्ष्य तौ ।
अकुर्वातां भोजकृपौ किं संजय वदस्व मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! अश्वत्थामाको शिबिरके द्वारपर खड़ा देख कृतवर्मा और कृपाचार्यने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

कृतवर्माणमामन्त्र्य कृपं च स महारथः ।
द्रौणिर्मन्युपरीतात्मा शिबिरद्वारमागमत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कृतवर्मा और कृपाचार्यको आमन्त्रित करके महारथी अश्वत्थामा क्रोधपूर्ण हृदयसे शिबिर-के द्वारपर आया ॥ २ ॥

तत्र भूतं महाकायं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
सोऽपश्यद् द्वारमाश्रित्य तिष्ठन्तं लोमहर्षणम् ॥ ३ ॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं महारुधिरविस्रवम् ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ ४ ॥
बाहुभिः स्वायतैः पीनैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ।
बद्धाङ्गदमहासर्पं ज्वालामालाकुलाननम् ॥ ५ ॥
दंष्ट्राकरालवदनं व्यादितास्यं भयानकम् ।
नयनानां सहस्रैश्च विचित्रैरभिभूषितम् ॥ ६ ॥

वहाँ उसने चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी एक विशालकाय अद्भुत प्राणीको देखा, जो द्वार रोककर खड़ा था, उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस महापुरुषने व्याघ्रका ऐसा चर्म धारण कर रक्खा था, जिससे बहुत अधिक रक्त चू रहा था, वह काले मृगचर्मकी चादर ओढ़े और सर्पोंका यज्ञोपवीत पहने हुए था। उसकी विशाल और मोटी भुजाएँ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये प्रहार करनेको उद्यत जान पड़ती थीं। उनमें बाजूबंदोंके स्थानमें बड़े-बड़े सर्प बँधे हुए थे तथा उसका मुख आगकी लपटोंसे व्याप्त दिखायी देता था। उसने मुँह फैला रक्खा था, जो दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता था। वह भयानक पुरुष सहस्रों विचित्र नेत्रोंसे सुशोभित था ॥ ३-६ ॥

नैव तस्य वपुः शक्यं प्रवक्तुं वेष एव च ।
सर्वथा तु तदालक्ष्य स्फुटेयुरपि पर्वताः ॥ ७ ॥

उसके शरीर और वेषका वर्णन नहीं किया जा सकता। सर्वथा उसे देख लेनेपर पर्वत भी भयके मारे विदीर्ण हो सकते थे ॥ ७ ॥

तस्यास्यान्नासिकाभ्यां च श्रवणाभ्यां च सर्वशः।
तेभ्यश्चाक्षिसहस्रेभ्यः प्रादुरासन् महार्चिषः ॥ ८ ॥

उसके मुखसे, दोनों नासिकाओंसे, कानोंसे और हजारों नेत्रोंसे भी सब ओर आगकी बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही थीं॥

तथा तेजोमरीचिभ्यः शङ्खचक्रगदाधराः ।
प्रादुरासन् हृषीकेशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥

उसके तेजकी किरणोंसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले सैकड़ों, हजारों विष्णु प्रकट हो रहे थे ॥ ९ ॥

तदत्यद्भुतमालोक्य भूतं लोकभयंकरम् ।
द्रौणिरव्यथितो दिव्यैरस्त्रवर्षैरवाकिरत् ॥ १० ॥

सम्पूर्ण जगत्को भयभीत करनेवाले उस अद्भुत प्राणीको देखकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा भयभीत नहीं हुआ, अपितु उसके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ १० ॥

द्रौणिमुक्ताञ्छरांस्तांस्तु तद् भूतं महदग्रसत् ।
उदधेरिव वार्योघान् पावको वडवामुखः ॥ ११ ॥

परंतु जैसे बडवानल समुद्रकी जलराशिको पी जाता है, उसी प्रकार उस महाभूतने अश्वत्थामाके छोड़े हुए सारे बाणोंको अपना ग्रास बना लिया ॥ ११ ॥

अग्रसत् तांस्तथाभूतं द्रौणिना प्रहिताञ्शरान् ।
अश्वत्थामा तु सम्प्रेक्ष्य शरौघांस्तान् निरर्थकान्॥१२॥
रथशक्तिं मुमोचासौ दीप्तामग्निशिखामिव ।

अश्वत्थामाने जो-जो बाण छोड़े, उन सबको वह महाभूत निगल गया। अपने बाण-समूहोंको व्यर्थ हुआ देख अश्वत्थामाने प्रज्वलित अग्निशिखाके समान देदीप्यमान रथ-शक्ति छोड़ी ॥ १२½ ॥

सा तमाहत्य दीप्ताग्रा रथशक्तिरदीर्यत ॥ १३ ॥
युगान्ते सूर्यमाहत्य महोल्केव दिवश्च्युता ।

उसका अग्रभाग तेजसे प्रकाशित हो रहा था। वह रथ-शक्ति उस महापुरुषसे टकराकर उसी प्रकार विदीर्ण हो गयी, जैसे प्रलयकालमें आकाशसे गिरी हुई बड़ी भारी उल्का सूर्यसे टकराकर नष्ट हो जाती है ॥ १३½ ॥

अथ हेमत्सरुं दिव्यं खड्गमाकाशवर्चसम् ॥ १४ ॥
कोशात् समुद्बबर्हाशु बिलाद् दीप्तमिवोरगम् ।

तब अश्वत्थामाने सोनेकी मूँठसे सुशोभित तथा आकाशके समान निर्मल कान्तिवाली अपनी दिव्य तलवार तुरंत ही म्यानसे बाहर निकाली, मानो प्रज्वलित सर्पको बिलसे बाहर निकाला गया हो ॥ १४½ ॥

ततः खड्गवरं धीमान् भूताय प्राहिणोत् तदा ॥ १५ ॥
स तदासाद्य भूतं वै विलयं नकुलवद् ययौ ।

फिर बुद्धिमान् द्रोणपुत्रने वह अच्छी-सी तलवार तत्काल ही उस महाभूतपर चला दी; परंतु वह उसके शरीरमें लगकर उसी तरह विलीन हो गयी, जैसे कोई नेवला बिलमें घुस गया हो ॥ १५½ ॥

ततः स कुपितो द्रौणिरिन्द्रकेतुनिभां गदाम् ॥ १६ ॥
ज्वलन्तीं प्राहिणोत् तस्मै भूतं तामपि चाग्रसत् ।

तदनन्तर कुपित हुए अश्वत्थामाने उसके ऊपर अपनी इन्द्रध्वजके समान प्रकाशित होनेवाली गदा चलायी; परंतु वह भूत उसे भी लील गया ॥ १६½ ॥

ततः सर्वायुधाभावे वीक्षमाणस्ततस्ततः ॥ १७ ॥
अपश्यत् कृतमाकाशमनाकाशं जनार्दनैः ।

इस प्रकार जब उसके सारे अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये, तब वह इधर-उधर देखने लगा। उस समय उसे सारा आकाश असंख्य विष्णुओंसे भरा दिखायी दिया ॥ १७½ ॥

तदद्भुततमं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रो निरायुधः ॥ १८ ॥
अब्रवीदतिसंतप्तः कृपवाक्यमनुस्मरन् ।

अस्त्रहीन अश्वत्थामा यह अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखकर कृपाचार्यके वचनोंका बारंबार स्मरण करता हुआ अत्यन्त संतप्त हो उठा और मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगा—॥

ब्रुवतामप्रियं पथ्यं सुहृदां न शृणोति यः ॥ १९ ॥
स शोचत्यापदं प्राप्य यथाहमतिवर्त्य तौ ।

'जो पुरुष अप्रिय किंतु हितकर वचन बोलनेवाले अपने सुहृदोंकी सीख नहीं सुनता है, वह विपत्तिमें पड़कर उसी तरह शोक करता है, जैसे मैं अपने उन दोनों सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके कष्ट पा रहा हूँ॥ १९½ ॥

शास्त्रदृष्टानविद्वान् यः समतीत्य जिघांसति ॥ २० ॥
स पथः प्रच्युतो धर्मात् कुपथे प्रतिहन्यते ।

'जो मूर्ख शास्त्रदर्शी पुरुषोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके दूसरोंकी हिंसा करना चाहता है, वह धर्ममार्गसे भ्रष्ट हो कुमार्गमें पड़कर स्वयं ही मारा जाता है ॥ २०½ ॥

गोब्राह्मणनृपस्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा ॥ २१ ॥
हीनप्राणजडान्धेषु सुप्तभीतोत्थितेषु च ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राणि च पातयेत् ॥ २२ ॥

'गौ, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, दुर्बल, जड, अन्धे, सोये हुए, डरे हुए, मतवाले, उन्मत्त और असावधान पुरुषोंपर मनुष्य शस्त्र न चलाये ॥ २१-२२ ॥

इत्येवं गुरुभिः पूर्वमुपदिष्टं नृणां सदा ।
सोऽहमुत्क्रम्य पन्थानं शास्त्रदिष्टं सनातनम् ॥ २३ ॥
अमार्गेणैवमारभ्य घोरामापदमागतः ।

'इस प्रकार गुरुजनोंने पहलेसे ही सब लोगोंको सदाके लिये यह शिक्षा दे रक्खी है। परंतु मैं उस शास्त्रोक्त सनातन मार्गका उल्लङ्घन करके बिना रास्तेके ही चलकर इस प्रकार अनुचित कर्मका आरम्भ करके भयंकर आपत्तिमें पड़ गया हूँ ॥ २३½ ॥

तां चापदं घोरतरां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥
यदुद्यम्य महत् कृत्यं भयादपि निवर्तते ।
अशक्तश्चैव तत् कर्तुं कर्म शक्तिबलादिह ॥ २५ ॥

'मनीषी पुरुष उसीको अत्यन्त भयंकर आपत्ति बताते हैं, जब कि मनुष्य किसी महान् कार्यका आरम्भ करके भयके कारण भी उससे पीछे हट जाता है और शक्ति-बलसे यहाँ उस कर्मको करनेमें असमर्थ हो जाता है ॥ २४-२५ ॥

न हि दैवाद् गरीयो वै मानुषं कर्म कथ्यते ।
मानुष्यं कुर्वतः कर्म यदि दैवान्न सिध्यति ॥ २६ ॥
स पथः प्रच्युतो धर्माद् विपदं प्रतिपद्यते ।

'मानव-कर्म (पुरुषार्थ) को दैवसे बढ़कर नहीं बताया गया है । पुरुषार्थ करते समय यदि दैववश सिद्धि नहीं प्राप्त हुई तो मनुष्य धर्ममार्गसे भ्रष्ट होकर विपत्तिमें फँस जाता है॥

प्रतिज्ञानं ह्यविज्ञानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २७ ॥
यदारभ्य क्रियां काञ्चिद् भयादिह निवर्तते ।

'यदि मनुष्य किसी कार्यको आरम्भ करके यहाँ भयके कारण उससे निवृत्त हो जाता है तो ज्ञानी पुरुष उसकी उस कार्यको करनेकी प्रतिज्ञाको अज्ञान या मूर्खता बताते हैं ॥

तदिदं दुष्प्रणीतेन भयं मां समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
न हि द्रोणसुतः संख्ये निवर्तेत कथंचन ।
इदं च सुमहद् भूतं दैवदण्डमिवोद्यतम् ॥ २९ ॥

'इस समय अपने ही दुष्कर्मके कारण मुझपर यह भय आ पहुँचा है । द्रोणाचार्यका पुत्र किसी प्रकार भी युद्धसे पीछे नहीं हट सकता; परंतु क्या करूँ, यह महाभूत मेरे मार्गमें विघ्न डालनेके लिये दैवदण्डके समान उठ खड़ा हुआ है ॥ २८-२९ ॥

न चैतदभिजानामि चिन्तयन्नपि सर्वथा ।
ध्रुवं येयमधर्मे मे प्रवृत्ता कलुषा मतिः ॥ ३० ॥
तस्याः फलमिदं घोरं प्रतिघाताय कल्पते ।
तदिदं दैवविहितं मम संख्ये निवर्तनम् ॥ ३१ ॥

'मैं सब प्रकारसे सोचने-विचारनेपर भी नहीं समझ पाता कि यह कौन है ? निश्चय ही जो मेरी यह कलुषित बुद्धि अधर्ममें प्रवृत्त हुई है, उसीका विघात करनेके लिये यह भयंकर परिणाम सामने आया है, अतः आज युद्धसे मेरा पीछे हटना दैवके विधानसे ही सम्भव हुआ है।३०-३१।

नान्यत्र दैवादुद्यन्तुमिह शक्यं कथंचन ।
सोऽहमद्य महादेवं प्रपद्ये शरणं विभुम् ॥ ३२ ॥
दैवदण्डमिमं घोरं स हि मे नाशयिष्यति ।

'दैवकी अनुकूलताके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, जिससे किसी प्रकार फिर यहाँ युद्धविषयक उद्योग किया जा सके; इसलिये आज मैं सर्वव्यापी भगवान् महादेवजीकी शरण लेता हूँ । वे ही मेरे सामने आये हुए इस भयानक दैवदण्डका नाश करेंगे ॥ ३२½ ॥

कपर्दिनं देवदेवमुमापतिमनामयम् ॥ ३३ ॥
कपालमालिनं रुद्रं भगनेत्रहरं हरम् ।
स हि देवोऽत्यगाद् देवांस्तपसा विक्रमेण च ।
तस्माच्छरणमभ्येमि गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ३४ ॥

'भगवान् शङ्कर तपस्या और पराक्रममें सब देवताओंसे बढ़कर हैं; अतः मैं उन्हीं रोग-शोकसे रहित, जटाजूटधारी, देवताओंके भी देवता, भगवती उमाके प्राणवल्लभ, कपाल-मालाधारी, भगनेत्र-विनाशक, पापहारी, त्रिशूलधारी एवं पर्वतपर शयन करनेवाले रुद्रदेवकी शरणमें जाता हूँ'।३३-३४।

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिचिन्तायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी चिन्ताविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामाद्वारा शिवकी स्तुति, उसके सामने एक अग्निवेदी तथा भूतगणोंका प्राकट्य और उसका आत्मसमर्पण करके भगवान् शिवसे खड्ग प्राप्त करना

संजय उवाच

एवं संचिन्तयित्वा तु द्रोणपुत्रो विशाम्पते ।
अवतीर्य रथोपस्थाद् देवेशं प्रणतः स्थितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! ऐसा सोचकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रथकी बैठकसे उतर पड़ा और देवेश्वर महादेवजी-को प्रणाम करके खड़ा हो इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥१॥

द्रौणिरुवाच

उग्रं स्थाणुं शिवं रुद्रं शर्वमीशानमीश्वरम् ।
गिरिशं वरदं देवं भवभावनमीश्वरम् ॥ २ ॥
शितिकण्ठमजं शुक्रं दक्षक्रतुहरं हरम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ३ ॥
श्मशानवासिनं दृप्तं महागणपतिं विभुम् ।
खट्वाङ्गधारिणं रुद्रं जटिलं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४ ॥
मनसा सुविशुद्धेन दुष्करेणाल्पचेतसा ।
सोऽहमात्मोपहारेण यक्ष्ये त्रिपुरघातिनम् ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा बोला—प्रभो ! आप उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, ईशान, ईश्वर और गिरिश आदि नामोंसे प्रसिद्ध वरदायक देवता तथा सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर हैं । आपके कण्ठमें नील चिह्न है । आप अजन्मा एवं शुद्धात्मा हैं । आपने ही दक्षके यज्ञका विनाश किया है । आप ही संहारकारी हर, विश्वरूप, भयानक नेत्रोंवाले, अनेक रूपधारी तथा उमादेवीके प्राणनाथ हैं । आप श्मशानमें निवास करते हैं । आपको अपनी शक्तिपर गर्व है । आप अपने महान् गणोंके अधिपति, सर्वव्यापी तथा खट्वाङ्गधारी हैं, उपासकोंका दुःख दूर करनेवाले रुद्र हैं, मस्तकपर जटा धारण करनेवाले ब्रह्मचारी हैं । आपने त्रिपुरासुरका विनाश किया है । मैं विशुद्ध हृदयसे अपने आपकी बलि देकर, जो मन्दमति मानवोंके लिये अति दुष्कर है, आपका यजन करूँगा॥

स्तुतं स्तुत्यं स्तूयमानममोघं कृत्तिवाससम् ।
विलोहितं नीलकण्ठमसह्यं दुर्निवारणम् ॥ ६ ॥
शुक्रं ब्रह्मसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च ।
व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्तं तपतां गतिम् ॥ ७ ॥
बहुरूपं गणाध्यक्षं त्र्यक्षं पारिषदप्रियम् ।

धनाध्यक्षेक्षितमुखं गौरीहृदयवल्लभम् ॥ ८ ॥
कुमारपितरं पिङ्गं गोवृषोत्तमवाहनम् ।
तनुवाससमत्युग्रमुमाभूषणतत्परम् ॥ ९ ॥
परं परेभ्यः परमं परं यस्मान्न विद्यते ।
इष्वस्त्रोत्तमभर्तारं दिगन्तं देशरक्षिणम् ॥ १० ॥
हिरण्यकवचं देवं चन्द्रमौलिविभूषणम् ।
प्रपद्ये शरणं देवं परमेण समाधिना ॥ ११ ॥

पूर्वकालमें आपकी स्तुति की गयी है, भविष्यमें भी आप स्तुतिके योग्य बने रहेंगे और वर्तमानकालमें भी आपकी स्तुति की जाती है। आपका कोई भी संकल्प या प्रयत्न व्यर्थ नहीं होता। आप व्याघ्र-चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं, लोहितवर्ण और नीलकण्ठ हैं। आपके वेगको सहन करना असम्भव है और आपको रोकना सर्वथा कठिन है। आप शुद्धस्वरूप ब्रह्म हैं। आपने ही ब्रह्माजीकी सृष्टि की है। आप ब्रह्मचारी, व्रतधारी तथा तपोनिष्ठ हैं, आपका कहीं अन्त नहीं है। आप तपस्वी जनोंके आश्रय, बहुत-से रूप धारण करनेवाले तथा गणपति हैं। आपके तीन नेत्र हैं। अपने पार्षदोंको आप बहुत प्रिय हैं। धनाध्यक्ष कुबेर सदा आपका मुख निहारा करते हैं। आप गौराङ्गिनी गिरिराज-नन्दिनीके हृदय-वल्लभ हैं। कुमार कार्तिकेयके पिता भी आप ही हैं। आपका वर्ण पिङ्गल है। वृषभ आपका श्रेष्ठ वाहन है। आप अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र धारण करनेवाले और अत्यन्त उग्र हैं। उमा देवीको विभूषित करनेमें तत्पर रहते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंसे श्रेष्ठ और परात्पर हैं। आपसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। आप उत्तम धनुष धारण करनेवाले, दिगन्तव्यापी तथा सब देशोंके रक्षक हैं। आपके श्रीअङ्गोंमें सुवर्णमय कवच शोभा पाता है। आपका स्वरूप दिव्य है तथा आप चन्द्रमय मुकुटसे विभूषित होते हैं। मैं अपने चित्तको पूर्णतः एकाग्र करके आप परमेश्वरकी शरणमें आता हूँ ॥ ६–११ ॥

इमां चेदापदं घोरां तराम्यद्य सुदुष्कराम् ।
सर्वभूतोपहारेण यक्ष्येऽहं शुचिना शुचिम् ॥ १२ ॥

यदि मैं आज इस अत्यन्त दुष्कर और भयंकर विपत्तिसे पार पा जाऊँ तो मैं सर्वभूतमय पवित्र उपहार समर्पित करके आप परम पावन परमेश्वरकी पूजा करूँगा ॥ १२ ॥

इति तस्य व्यवसितं ज्ञात्वा योगात् सुकर्मणः ।
पुरस्तात् काञ्चनी वेदी प्रादुरासीन्महात्मनः ॥ १३ ॥

इस प्रकार अश्वत्थामाका दृढ़ निश्चय जानकर उसके शुभकर्मके योगसे उस महामनस्वी वीरके आगे एक सुवर्णमयी वेदी प्रकट हुई ॥ १३ ॥

तस्यां वेद्यां तदा राजंश्चित्रभानुरजायत ।
स दिशो विदिशः खं च ज्वालाभिरिव पूरयन्॥ १४ ॥

राजन्! उस वेदीपर तत्काल ही अग्निदेव प्रकट हो गये, जो अपनी ज्वालाओंसे सम्पूर्ण दिशाओं-विदिशाओं और आकाशको परिपूर्ण-सा कर रहे थे ॥ १४ ॥

दीप्तास्यनयनाश्चात्र नैकपादशिरोभुजाः ।
रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ॥ १५ ॥
द्वीपशैलप्रतीकाशाः प्रादुरासन् महागणाः ।

वहीं बहुत-से महान् गण प्रकट हो गये, जो द्वीपवर्ती पर्वतोंके समान बहुत ऊँचे कदके थे। उनके मुख और नेत्र दीप्तिसे दमक रहे थे। उन गणोंके पैर, मस्तक और भुजाएँ अनेक थीं। वे अपनी बाहोंमें रत्न-निर्मित विचित्र अङ्गद धारण किये हुए थे। उन सबने अपने हाथ ऊपर उठा रक्खे थे ॥ १५½ ॥

श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च हयगोमायुगोमुखाः ॥ १६ ॥
ऋक्षमार्जारवदना व्याघ्रद्वीपिमुखास्तथा ।
काकवक्त्राः प्लवमुखाः शुकवक्त्रास्तथैव च ॥ १७ ॥
महाजगरवक्त्राश्च हंसवक्त्राः सितप्रभाः ।
दार्वाघाटमुखाश्चापि चाषवक्त्राश्च भारत ॥ १८ ॥

उनके रूप कुत्ते, सूअर और ऊँटोंके समान थे; मुँह घोड़ों, गीदड़ों और गाय-बैलोंके समान जान पड़ते थे। किन्हींके मुख रीछोंके समान थे तो किन्हींके बिलावोंके समान। कोई बाघोंके समान मुँहवाले थे तो कोई चीतोंके। कितने ही गणोंके मुख कौओं, वानरों, तोतों, बड़े-बड़े अजगरों और हंसोंके समान थे। भारत! कितनोंकी कान्ति भी हंसोंके समान सफेद थी, कितने ही गणोंके मुख कठफोरवा पक्षी और नीलकण्ठके समान थे ॥ १६–१८ ॥

कूर्मनक्रमुखाश्चैव शिशुमारमुखास्तथा ।
महामकरवक्त्राश्च तिमिवक्त्रास्तथैव च ॥ १९ ॥
हरिवक्त्राः क्रौञ्चमुखाः कपोतेभमुखास्तथा ।
पारावतमुखाश्चैव मद्गुवक्त्रास्तथैव च ॥ २० ॥

इसी प्रकार बहुत-से गण कछुए, नाके, सूँस, बड़े-बड़े मगर, तिमि नामक मत्स्य, मोर, क्रौञ्च (कुरर), कबूतर, हाथी, परेवा तथा मद्गु नामक जलपक्षीके समान मुखवाले थे ॥ १९-२० ॥

पाणिकर्णाः सहस्राक्षास्तथैव च महोदराः ।
निर्मांसाः काकवक्त्राश्च श्येनवक्त्राश्च भारत ॥ २१ ॥
तथैवाशिरसो राजन्नृक्षवक्त्राश्च भारत ।
प्रदीप्तनेत्रजिह्वाश्च ज्वालावर्णास्तथैव च ॥ २२ ॥

किन्हींके हाथोंमें ही कान थे। कितने ही हजार-हजार नेत्र और लंबे पेटवाले थे। कितनोंके शरीर मांसरहित, हड्डियोंके ढाँचे मात्र थे। भरतनन्दन! कोई कौओंके समान मुखवाले थे तो कोई बाजके समान। राजन्! किन्हीं-किन्हींके तो सिर ही नहीं थे। भारत! कोई-कोई भालूके समान मुखवाले थे। उन सबके नेत्र और जिह्वाएँ तेजसे प्रज्वलित हो रही थीं। अङ्गोंकी कान्ति आगकी ज्वालाके समान जान पड़ती थी ॥ २१-२२ ॥

ज्वालाकेशाश्च राजेन्द्र ज्वलद्रोमचतुर्भुजाः ।
मेषवक्त्रास्तथैवान्ये तथा छागमुखा नृप ॥ २३ ॥

राजेन्द्र! उनके केश भी अग्नि-शिखाके समान प्रतीत होते थे। उनका रोम-रोम प्रज्वलित हो रहा था। उन सबके

चार भुजाएँ थीं। नरेश्वर ! कितने ही गणोंके मुख भेड़ों और बकरोंके समान थे ॥ २३ ॥

शङ्खाभाः शङ्खवक्त्राश्च शङ्खवर्णास्तथैव च ।
शङ्खमालापरिकराः शङ्खध्वनिसमस्वनाः ॥ २४ ॥

कितनोंके मुख, वर्ण और कान्ति शङ्खके सदृश थे। वे शङ्खकी मालाओंसे अलङ्कृत थे और उनके मुखसे शङ्खध्वनिके समान ही शब्द प्रकट होते थे ॥ २४ ॥

जटाधराः पञ्चशिखास्तथा मुण्डाः कृशोदराः ।
चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्जिह्वाः शङ्कुकर्णाः किरीटिनः ॥ २५ ॥

कोई समूचे सिरपर जटा धारण करते थे, कोई पाँच शिखाएँ रखते थे और कितने ही मूड़ मुड़ाये रहते थे। बहुतोंके उदर अत्यन्त कृश थे, कितनोंके चार दाढ़ें और चार जिह्वाएँ थीं। किन्हींके कान खूँटीके समान जान पड़ते थे और कितने ही पार्षद अपने मस्तकपर किरीट धारण करते थे ॥ २५ ॥

मौञ्जीधराश्च राजेन्द्र तथा कुञ्चितमूर्धजाः ।
उष्णीषिणो मुकुटिनश्चारुवक्त्राः स्वलङ्कृताः ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! कोई मूँजकी मेखला पहने हुए थे, किन्हींके सिरके बाल घुँघराले दिखायी देते थे, कोई पगड़ी धारण किये हुए थे तो कोई मुकुट। कितनोंके मुख बड़े ही मनोहर थे। कितने ही सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ २६ ॥

पद्मोत्पलापीडधरास्तथा मुकुटधारिणः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥

कोई अपने मस्तकपर कमलों और कुमुदोंका किरीट धारण करते थे। बहुतोंने विशुद्ध मुकुट धारण कर रक्खा था। वे भूतगण सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें थे और सभी अद्भुत माहात्म्यसे सम्पन्न थे ॥ २७ ॥

शतघ्नीवज्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
भुशुण्डीपाशहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥ २८ ॥

भारत ! उनके हाथोंमें शतघ्नी, वज्र, मूसल, भुशुण्डी, पाश और दण्ड शोभा पाते थे ॥ २८ ॥

पृष्ठेषु बद्धेषुधयश्चित्रबाणोत्कटास्तथा ।
सध्वजाः सपताकाश्च सघण्टाः सपरश्वधाः ॥ २९ ॥

उनकी पीठोंपर तरकस बँधे थे। वे विचित्र बाण लिये युद्धके लिये उन्मत्त जान पड़ते थे। उनके पास ध्वजा, पताका, घंटे और फरसे मौजूद थे ॥ २९ ॥

महापाशोद्यतकरास्तथा लगुडपाणयः ।
स्थूणाहस्ताः खड्गहस्ताः सर्पोच्छ्रितकिरीटिनः ॥ ३० ॥

उन्होंने अपने हाथोंमें बड़े-बड़े पाश उठा रक्खे थे, कितनोंके हाथोंमें डंडे, खम्भे और खड्ग शोभा पाते थे तथा कितनोंके मस्तकपर सर्पोंके उन्नत किरीट सुशोभित होते थे ॥

महासर्पाङ्गदधराश्चित्राभरणधारिणः ।
रजोध्वस्ताः पङ्कदिग्धाः सर्वे शुक्लाम्बरस्रजः ॥ ३१ ॥

कितनोंने बाजूबंदोंके स्थानमें बड़े-बड़े सर्प धारण कर रक्खे थे। कितने ही विचित्र आभूषणोंसे विभूषित थे, बहुतोंके शरीर धूलि-धूसर हो रहे थे। कितने ही अपने अङ्गोंमें कीचड़ लपेटे हुए थे। उन सबने श्वेत वस्त्र और श्वेत फूलोंकी माला धारण कर रक्खी थी ॥ ३१ ॥

नीलाङ्गाः पिङ्गलाङ्गाश्च मुण्डवक्त्रास्तथैव च ।
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च झर्झरानकगोमुखान् ॥ ३२ ॥
अवादयन् पारिषदाः प्रहृष्टाः कनकप्रभाः ।
गायमानास्तथैवान्ये नृत्यमानास्तथा परे ॥ ३३ ॥

कितनोंके अङ्ग नील और पिङ्गलवर्णके थे। कितनोंने अपने मस्तकके बाल मुँड़वा दिये। कितने ही सुनहरी प्रभासे प्रकाशित हो रहे थे। वे सभी पार्षद हर्षसे उत्फुल्ल हो भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, ढोल और गोमुख बजा रहे थे। कितने ही गीत गा रहे थे और दूसरे बहुत-से पार्षद नाच रहे थे ॥

लङ्घयन्तः प्लवन्तश्च वल्गन्तश्च महारथाः ।
धावन्तो जवना मुण्डाः पवनोद्धूतमूर्धजाः ॥ ३४ ॥

वे महारथी भूतगण उछलते, कूदते और लाँघते हुए बड़े वेगसे दौड़ रहे थे। उनमेंसे कितने तो माथ मुँड़ाये हुए थे और कितनोंके सिरके बाल हवाके झोंकेसे ऊपरकी ओर उठ गये थे ॥ ३४ ॥

मत्ता इव महानागा विनदन्तो मुहुर्मुहुः ।
सुभीमा घोररूपाश्च शूलपट्टिशपाणयः ॥ ३५ ॥

वे मतवाले गजराजोंके समान बारंबार गर्जना करते थे। उनके हाथोंमें शूल और पट्टिश दिखायी देते थे। वे घोर रूपधारी और भयंकर थे ॥ ३५ ॥

नानाविरागवसनाश्चित्रमाल्यानुलेपनाः ।
रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ॥ ३६ ॥

उनके वस्त्र नाना प्रकारके रंगोंमें रँगे हुए थे। वे विचित्र माला और चन्दनसे अलङ्कृत थे। उन्होंने रत्ननिर्मित विचित्र अङ्गद धारण कर रक्खे थे और उन सबके हाथ ऊपरकी ओर उठे हुए थे ॥ ३६ ॥

हन्तारो द्विषतां शूराः प्रसह्यासह्यविक्रमाः ।
पातारोऽसृग्वसौघानां मांसान्त्रकृतभोजनाः ॥ ३७ ॥

वे शूरवीर पार्षद हठपूर्वक शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ थे। उनका पराक्रम असह्य था। वे रक्त और वसा पीते तथा आँत और मांस खाते थे ॥ ३७ ॥

चूडालाः कर्णिकाराश्च प्रहृष्टाः पिठरोदराः ।
अतिह्रस्वातिदीर्घाश्च प्रलम्बाश्चातिभैरवाः ॥ ३८ ॥

कितनोंके मस्तकपर शिखाएँ थीं। कितने ही कनेरके फूल धारण करते थे। बहुतेरे पार्षद अत्यन्त हर्षसे खिल उठे थे। कितनोंके पेट बटलोई या कड़ाहीके समान जान पड़ते थे। कोई बहुत नाटे, कोई बहुत मोटे, कोई बहुत लंबे और कोई अत्यन्त भयंकर थे ॥ ३८ ॥

विकटाः काललम्बोष्ठा बृहच्छेफाण्डपिण्डिकाः ।
महार्हनानामुकटा मुण्डाश्च जटिलाः परे ॥ ३९ ॥

कितनोंके आकार बहुत विकट थे, कितनोंके काले-काले और लंबे ओठ लटक रहे थे, किन्हींके लिङ्ग बड़े थे तो किन्हीं-

के अण्डकोष। किन्हींके मस्तकोंपर नाना प्रकारके बहुमूल्य मुकुट शोभा पाते थे, कुछ लोग मथमुंडे थे और कुछ जटाधारी॥

सार्केन्दुग्रहनक्षत्रां द्यां कुर्युस्ते महीतले।
उत्सहेरंश्च ये हन्तुं भूतग्रामं चतुर्विधम्॥ ४०॥

वे सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित सम्पूर्ण आकाश-मण्डलको पृथ्वीपर गिरा सकते थे और चार प्रकारके समस्त प्राणि-समुदायका संहार करनेमें समर्थ थे॥ ४०॥

ये च वीतभया नित्यं हरस्य भ्रुकुटीसहाः।
कामकारकरा नित्यं त्रैलोक्यस्येश्वरेश्वराः॥ ४१॥

वे सदा निर्भय होकर भगवान् शंकरके भ्रूभंगको सहन करनेवाले थे। प्रतिदिन इच्छानुसार कार्य करते और तीनों लोकोंके ईश्वरोंपर भी शासन कर सकते थे॥ ४१॥

नित्यानन्दप्रमुदिता वागीशा वीतमत्सराः।
प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं ये न यास्यन्ति वै स्मयम्॥ ४२॥

वे पार्षद नित्य आनन्दमें मग्न रहते थे, वाणीपर उनका अधिकार था। उनके मनमें किसीके प्रति ईर्ष्या और द्वेष नहीं रह गये थे। वे अणिमा-महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्यको पाकर भी कभी अभिमान नहीं करते थे॥ ४२॥

येषां विस्मयते नित्यं भगवान् कर्मभिर्हरः।
मनोवाक्कर्मभिर्युक्तैर्नित्यमाराधितश्च यैः॥ ४३॥

साक्षात् भगवान् शंकर भी प्रतिदिन उनके कर्मोंको देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे। वे मन, वाणी और क्रियाओं-द्वारा सदा सावधान रहकर महादेवजीकी आराधना करते थे॥

मनोवाक्कर्मभिर्भक्तान् पाति पुत्रानिवौरसान्।
पिबन्तोऽसृग्वसाश्चान्ये क्रुद्धा ब्रह्मद्विषां सदा॥ ४४॥

मन, वाणी और कर्मसे अपने प्रति भक्ति रखनेवाले उन भक्तोंका भगवान् शिव सदा औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करते थे। बहुत-से पार्षद रक्त और वसा पीकर रहते थे। वे ब्रह्मद्रोहियोंपर सदा क्रोध प्रकट करते थे॥ ४४॥

चतुर्विधात्मकं सोमं ये पिबन्ति च सर्वदा।
श्रुतेन ब्रह्मचर्येण तपसा च दमेन च॥ ४५॥
ये समाराध्य शूलाङ्कं भवसायुज्यमागताः।

अन्न, सोमलताका रस, अमृत और चन्द्रमण्डल—ये चार प्रकारके सोम हैं, वे पार्षदगण इनका सदा पान करते हैं। उन्होंने वेदोंके स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यपालन, तपस्या और इन्द्रिय-संयमके द्वारा त्रिशूल-चिह्नित भगवान् शिवकी आराधना करके उनका सायुज्य प्राप्त कर लिया है॥ ४५½॥

यैरात्मभूतैर्भगवान् पार्वत्या च महेश्वरः॥ ४६॥
महाभूतगणैर्भुङ्क्ते भूतभव्यभवत्प्रभुः।

वे महाभूतगण भगवान् शिवके आत्मस्वरूप हैं, उनके तथा पार्वतीदेवीके साथ भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी महेश्वर यज्ञ-भाग ग्रहण करते हैं॥ ४६½॥

नानावादित्रहसितक्ष्वेडितोत्कुष्टगर्जितैः॥ ४७॥
संत्रासयन्तस्ते विश्वमश्वत्थामानमभ्ययुः।

भगवान् शिवके वे पार्षद नाना प्रकारके बाजे बजाने, हँसने, सिंहनाद करने, ललकारने तथा गर्जने आदिके द्वारा सम्पूर्ण विश्वको भयभीत करते हुए अश्वत्थामाके पास आये॥

संस्तुवन्तो महादेवं भाः कुर्वाणाः सुवर्चसः॥ ४८॥
विवर्धयिषवो द्रौणेर्महिमानं महात्मनः।
जिज्ञासमानास्तत्तेजः सौप्तिकं च दिदृक्षवः॥ ४९॥
भीमोग्रपरिघालातशूलपट्टिशपाणयः।
घोररूपाः समाजग्मुर्भूतसङ्घाः समन्ततः॥ ५०॥

भूतोंके वे समूह बड़े भयंकर और तेजस्वी थे तथा सब ओर अपनी प्रभा फैला रहे थे। अश्वत्थामामें कितना तेज है, इस बातको वे जानना चाहते थे और सोते समय जो महान् संहार होनेवाला था, उसे भी देखनेकी इच्छा रखते थे। साथ ही महामनस्वी द्रोणकुमारकी महिमा बढ़ाना चाहते थे; इसी-लिये महादेवजीकी स्तुति करते हुए वे चारों ओरसे वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथोंमें अत्यन्त भयंकर परिघ, जलते लुआठे, त्रिशूल और पट्टिश शोभा पा रहे थे॥ ४८—५०॥

जनयेयुर्भयं ये स्म त्रैलोक्यस्यापि दर्शनात्।
तान् प्रेक्षमाणोऽपि व्यथां न चकार महाबलः॥ ५१॥

भगवान् भूतनाथके वे गण दर्शन देनेमात्रसे तीनों लोकोंके मनमें भय उत्पन्न कर सकते थे, तथापि महाबली अश्वत्थामा उन्हें देखकर तनिक भी व्यथित नहीं हुआ॥

अथ द्रौणिर्धनुष्पाणिर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
स्वयमेवात्मनात्मानमुपहारमुपाहरत्॥ ५२॥

तदनन्तर हाथमें धनुष लिये और गोहके चर्मके बने दस्ताने पहने हुए द्रोणकुमारने स्वयं ही अपने आपको भगवान् शिवके चरणोंमें भेंट चढ़ा दिया॥ ५२॥

धनूंषि समिधस्तत्र पवित्राणि शिताः शराः।
हविरात्मवतश्चात्मा तस्मिन् भारत कर्मणि॥ ५३॥

भारत! उस आत्म-समर्पणरूपी यज्ञकर्ममें आत्मबलसम्पन्न अश्वत्थामाका धनुष ही समिधा, तीखे बाण ही कुशा और शरीर ही हविष्यरूपमें प्रस्तुत हुए॥ ५३॥

ततः सौम्येन मन्त्रेण द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
उपहारं महामन्युरथात्मानमुपाहरत्॥ ५४॥

फिर महाक्रोधी प्रतापी द्रोणपुत्रने सोमदेवता-सम्बन्धी मन्त्र[1]-के द्वारा अपने शरीरको ही उपहारके रूपमें अर्पित कर दिया॥

तं रुद्रं रौद्रकर्माणं रौद्रैः कर्मभिरच्युतम्।
अभिष्टुत्य महात्मानमित्युवाच कृताञ्जलिः॥ ५५॥

भयंकर कर्म करनेवाले तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले महात्मा रुद्रदेवकी रौद्रकर्मोंद्वारा ही स्तुति करके अश्वत्थामा हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला॥ ५५॥

द्रौणिरुवाच

इममात्मानमद्याहं जातमाङ्गिरसे कुले।
स्वग्नौ जुहोमि भगवन् प्रतिगृह्णीष्व मां बलिम्॥ ५६॥

अश्वत्थामाने कहा—भगवन्! आज मैं आङ्गिरस

१. वह मन्त्र इस प्रकार है—'आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे।'

कुलमें उत्पन्न हुए अपने शरीरकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति देता हूँ । आप मुझे हविष्यरूपमें ग्रहण कीजिये ॥ ५६ ॥

भवद्भक्त्या महादेव परमेण समाधिना ।
अस्यामापदि विश्वात्मन्नुपाकुर्मि तवाग्रतः ॥ ५७ ॥

विश्वात्मन् ! महादेव ! इस आपत्तिके समय आपके प्रति भक्तिभावसे अपने चित्तको पूर्ण एकाग्र करके आपके समक्ष यह भेंट समर्पित करता हूँ (आप इसे स्वीकार करें)॥५७॥

त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चासि वै ।
गुणानां हि प्रधानानामेकत्वं त्वयि तिष्ठति ॥ ५८ ॥

प्रभो ! सम्पूर्ण भूत आपमें स्थित हैं और आप सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित हैं । आपमें ही मुख्य-मुख्य गुणोंकी एकता होती है ॥ ५८ ॥

सर्वभूताश्रय विभो हविर्भूतमवस्थितम् ।
प्रतिगृहाण मां देव यद्यशक्याः परे मया ॥ ५९ ॥

विभो ! आप सम्पूर्ण भूतोंके आश्रय हैं । देव ! यदि शत्रुओंका मेरे द्वारा पराभव नहीं हो सकता तो आप हविष्य-रूपमें सामने खड़े हुए मुझ अश्वत्थामाको स्वीकार कीजिये ॥

इत्युक्त्वा द्रौणिरास्थाय तां वेदीं दीप्तपावकाम् ।
संत्यज्यात्मानमारुह्य कृष्णवर्त्मन्युपाविशत्॥ ६० ॥

ऐसा कहकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा प्रज्वलित अग्निसे प्रकाशित हुई उस वेदीपर चढ़ गया और प्राणोंका मोह छोड़-कर आगके बीचमें बैठ गया ॥ ६० ॥

तमूर्ध्वबाहुं निश्चेष्टं दृष्ट्वा हविरुपस्थितम् ।
अब्रवीद् भगवान् साक्षान्महादेवो हसन्निव ॥ ६१ ॥

उसे हविष्यरूपसे दोनों बाँहें ऊपर उठाये निश्चेष्ट भावसे बैठे देख साक्षात् भगवान् महादेवने हँसते हुए-से कहा—॥

सत्यशौचार्जवत्यागैस्तपसा नियमेन च ।
क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या च बुद्ध्या च वचसा तथा ॥
यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥ ६३ ॥

'अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तपस्या, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वाणीके द्वारा मेरी यथोचित आराधना की है; अतः श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई मुझे परम प्रिय नहीं है॥

कुर्वता तात सम्मानं त्वां च जिज्ञासता मया ।
पञ्चालाः सहसा गुप्ता मायाश्च बहुशः कृताः॥ ६४ ॥

'तात ! उन्हींका सम्मान और तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये मैंने पाञ्चालोंकी सहसा रक्षा की है और बारंबार मायाओं-का प्रयोग किया है ॥ ६४ ॥

कृतस्तस्यैव सम्मानः पञ्चालान् रक्षता मया ।
अभिभूतास्तु कालेन नैषामद्यास्ति जीवितम् ॥ ६५ ॥

'पाञ्चालोंकी रक्षा करके मैंने श्रीकृष्णका ही सम्मान किया है; परंतु अब वे कालसे पराजित हो गये हैं, अब इनका जीवन शेष नहीं है' ॥ ६५ ॥

एवमुक्त्वा महात्मानं भगवानात्मनस्तनुम् ।
आविवेश ददौ चास्मै विमलं खड्गमुत्तमम् ॥ ६६ ॥

महामना अश्वत्थामासे ऐसा कहकर भगवान् शिवने अपने स्वरूपभूत उसके शरीरमें प्रवेश किया और उसे एक निर्मल एवं उत्तम खड्ग प्रदान किया ॥ ६६ ॥

अथाविष्टो भगवता भूयो जज्वाल तेजसा ।
वेगवांश्चाभवद् युद्धे देवसृष्टेन तेजसा ॥ ६७ ॥

भगवान्का आवेश हो जानेपर अश्वत्थामा पुनः अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित हो उठा । उस देवप्रदत्त तेजसे सम्पन्न हो वह युद्धमें और भी वेगशाली हो गया ॥ ६७ ॥

तमदृश्यानि भूतानि रक्षांसि च समाद्रवन् ।
अभितः शत्रुशिबिरं यान्तं साक्षादिवेश्वरम् ॥ ६८ ॥

साक्षात् महादेवजीके समान शत्रुशिबिरकी ओर जाते हुए अश्वत्थामाके साथ-साथ बहुत-से अदृश्य भूत और राक्षस भी दौड़े गये ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिक पर्वणि द्रौणिकृतशिवार्चने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें द्रोणपुत्रद्वारा की हुई भगवान् शिवकी पूजाविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा रात्रिमें सोये हुए पाञ्चाल आदि समस्त वीरोंका संहार तथा फाटकसे निकलकर भागते हुए योद्धाओंका कृतवर्मा और कृपाचार्य द्वारा वध

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महारथे ।
कच्चित् कृपश्च भोजश्च भयार्तौ न व्यवर्तताम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब महारथी द्रोणपुत्र इस प्रकार शिबिरकी ओर चला, तब कृपाचार्य और कृतवर्मा भयसे पीड़ित हो लौट तो नहीं गये ? ॥ १ ॥

कच्चिन्न वारितौ क्षुद्रै रक्षिभिर्नोपलक्षितौ ।
असह्यमिति मन्वानौ न निवृत्तौ महारथौ ॥ २ ॥
कच्चिदुन्मथ्य शिबिरं हत्वा सोमकपाण्डवान् ।
(कृता प्रतिज्ञा सफला कच्चित् संजय सा निशि ।)

कहीं नीच द्वार-रक्षकोंने उन्हें रोक तो नहीं दिया ? किसीने उन्हें देखा तो नहीं ? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे दोनों महारथी इस कार्यको असह्य मानकर लौट गये हों ? संजय ! क्या उस शिबिरको मथकर सोमकों और पाण्डवोंकी हत्या करके रातमें अश्वत्थामाने अपनी प्रतिज्ञा सफल कर ली ? ॥

दुर्योधनस्य पदवीं गतौ परमिकां रणे ॥ ३ ॥
पञ्चालैर्निहतौ वीरौ कच्चिन्नास्वपतां क्षितौ ।
कच्चित् ताभ्यां कृतं कर्म तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

वे दोनों वीर पाञ्चालोंके द्वारा मारे जाकर धरतीपर सदाके लिये सो तो नहीं गये ? रणभूमिमें मरकर दुर्योधनके ही उत्तम मार्गपर चले तो नहीं गये ? क्या उन दोनोंने भी वहाँ कोई पराक्रम किया ? संजय ! ये सब बातें मुझे बताओ॥

संजय उवाच

तस्मिन् प्रयाते शिविरं द्रोणपुत्रे महात्मनि ।
कृपश्च कृतवर्मा च शिविरद्वार्यतिष्ठताम् ॥ ५ ॥

संजयने कहा—राजन् ! महामनस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा जब शिविरके भीतर जाने लगा, उस समय कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसके दरवाजेपर जा खड़े हुए ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ ।
प्रहृष्टः शनकै राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

महाराज ! उन दोनों महारथियोंको अपना साथ देनेके लिये प्रयत्नशील देख अश्वत्थामाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने उनसे धीरेसे इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥

यत्तौ भवन्तौ पर्याप्तौ सर्वक्षत्रस्य नाशने ।
किं पुनर्योधशेषस्य प्रसुप्तस्य विशेषतः ॥ ७ ॥

'यदि आप दोनों सावधान होकर चेष्टा करें तो सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये पर्याप्त हैं । फिर इन बचे-खुचे और विशेषतः सोये हुए योद्धाओंको मारना कौन बड़ी बात है ? ॥ ७ ॥

अहं प्रवेक्ष्ये शिविरं चरिष्यामि च कालवत् ।
यथा न कश्चिदपि वा जीवन् मुच्येत मानवः ॥ ८ ॥
तथा भवद्भ्यां कार्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः ।

'मैं तो इस शिविरके भीतर घुस जाऊँगा और वहाँ कालके समान विचरूँगा । आपलोग ऐसा करें जिससे कोई भी मनुष्य आप दोनोंके हाथसे जीवित न बच सके, यही मेरा दृढ़ विचार है' ॥ ८½ ॥

इत्युक्त्वा प्राविशद् द्रौणिः पार्थानां शिविरं महत् ॥ ९ ॥
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य विहाय भयमात्मनः ।

ऐसा कहकर द्रोणकुमार पाण्डवोंके विशाल शिविरमें बिना दरवाजेके ही कूदकर घुस गया । उसने अपने जीवनका भय छोड़ दिया था ॥ ९½ ॥

स प्रविश्य महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नस्य निलयं शनकैरभ्युपागमत् ।

वह महाबाहु वीर शिविरके प्रत्येक स्थानसे परिचित था, अतः धीरे-धीरे धृष्टद्युम्नके खेमेमें जा पहुँचा ॥ १०½ ॥

ते तु कृत्वा महत् कर्म श्रान्ताश्च बलवद् रणे ॥ ११ ॥
प्रसुप्ताश्चैव विश्वस्ताः स्वसैन्यपरिवारिताः ।

वहाँ वे पाञ्चाल वीर रणभूमिमें महान् पराक्रम करके बहुत थक गये थे और अपने सैनिकोंसे घिरे हुए निश्चिन्त सो रहे थे ॥ ११½ ॥

अथ प्रविश्य तद् वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत ॥ १२ ॥
पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत् सुप्तमन्तिकात् ।
क्षौमावदाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ १३ ॥
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते ।

भरतनन्दन ! धृष्टद्युम्नके उस डेरेमें प्रवेश करके द्रोणकुमारने देखा कि पाञ्चालराजकुमार पास ही बहुमूल्य बिछौनोंसे युक्त तथा रेशमी चादरसे ढकी हुई एक विशाल शय्यापर सो रहा है । वह शय्या श्रेष्ठ मालाओंसे सुसज्जित तथा धूप एवं चन्दन चूर्णसे सुवासित थी ॥ १२-१३½ ॥

तं शयानं महात्मानं विश्रब्धमकुतोभयम् ॥ १४ ॥
प्राबोधयत पादेन शयनस्थं महीपते ।

भूपाल ! अश्वत्थामाने निश्चिन्त एवं निर्भय होकर शय्यापर सोये हुए महामनस्वी धृष्टद्युम्नको पैरसे ठोकर मारकर जगाया ॥ १४½ ॥

सम्बुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रणदुर्मदः ॥ १५ ॥
अभ्यजानादमेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथम् ।

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न रणदुर्मद धृष्टद्युम्न उसके पैर लगते ही जाग उठा और जागते ही उसने महारथी द्रोणपुत्रको पहचान लिया ॥ १५½ ॥

तमुत्पतन्तं शयनादश्वत्थामा महाबलः ॥ १६ ॥
केशेष्वालभ्य पाणिभ्यां निष्पिपेष महीतले ।

अब वह शय्यासे उठनेकी चेष्टा करने लगा । इतनेहीमें महाबली अश्वत्थामाने दोनों हाथसे उसके बाल पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और वहाँ अच्छी तरह रगड़ा ॥ १६½ ॥

सबलं तेन निष्पिष्टः साध्वसेन च भारत ॥ १७ ॥
निद्रया चैव पाञ्चाल्यो नाशकच्चेष्टितुं तदा ।

भारत ! धृष्टद्युम्न भय और निद्रासे दबा हुआ था । उस अवस्थामें जब अश्वत्थामाने उसे जोरसे पटककर रगड़ना आरम्भ किया, तब उससे कोई भी चेष्टा करते न बना ॥

तमाक्रम्य पदा राजन् कण्ठे चोरसि चोभयोः॥ १८ ॥
नदन्तं विस्फुरन्तं च पशुमारममारयत् ।

राजन् ! उसने पैरसे उसकी छाती और गला दोनोंको दबा दिया और उसे पशुकी तरह मारना आरम्भ किया । वह बेचारा चीखता और छटपटाता रह गया ॥ १८½ ॥

तुदन्नखैस्तु स द्रौणिं नातिव्यक्तमुदाहरत् ॥ १९ ॥
आचार्यपुत्र शस्त्रेण जहि मां मा चिरं कृथाः ।
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान् गच्छेयं द्विपदां वर ॥ २० ॥

उसने अपने नखोंसे द्रोणकुमारको बकोटते हुए अस्पष्ट वाणीमें कहा—'मनुष्योंमें श्रेष्ठ आचार्यपुत्र ! अब देरी न करो । मुझे किसी शस्त्रसे मार डालो, जिससे तुम्हारे कारण मैं पुण्यलोकोंमें जा सकूँ' ॥ १९-२० ॥

एवमुक्त्वा तु वचनं विरराम परंतपः ।
सुतः पाञ्चालराजस्य आक्रान्तो बलिना भृशम् ॥ २१ ॥

ऐसा कहकर बलवान् शत्रुके द्वारा बड़े जोरसे दबाया हुआ शत्रुसंतापी पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न चुप हो गया ॥

तस्याव्यक्तां तु तां वाचं संश्रुत्य द्रौणिरब्रवीत् ।
आचार्यघातिनां लोका न सन्ति कुलपांसन ॥ २२ ॥
तस्माच्छस्त्रेण निधनं न त्वमर्हसि दुर्मते ।

उसकी उस अस्पष्ट वाणीको सुनकर द्रोणपुत्रने कहा—'रे कुलकलंक ! अपने आचार्यकी हत्या करनेवाले लोगोंके लिये पुण्यलोक नहीं है; अतः दुर्मते ! तू शस्त्रके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं है' ॥ २२½ ॥

एवं ब्रुवाणस्तं वीरं सिंहो मत्तमिव द्विपम् ॥ २३ ॥
मर्मस्वभ्यवधीत् क्रुद्धः पादार्ष्ठीलैः सुदारुणैः ।

उस वीरसे ऐसा कहते हुए क्रोधी अश्वत्थामाने मतवाले हाथीपर चोट करनेवाले सिंहके समान अपनी अत्यन्त भयंकर एड़ियोंसे उसके मर्मस्थानोंपर प्रहार किया ॥ २३½ ॥

तस्य वीरस्य शब्देन मार्यमाणस्य वेश्मनि ॥ २४ ॥
अबुध्यन्त महाराज स्त्रियो ये चास्य रक्षिणः ।

महाराज ! उस समय मारे जाते हुए वीर धृष्टद्युम्नके आर्तनादसे उस शिविरकी स्त्रियाँ तथा सारे रक्षक जाग उठे॥

ते दृष्ट्वा धर्षयन्तं तमतिमानुषविक्रमम् ॥ २५ ॥
भूतमेवाध्यवस्यन्तो न स्म प्रव्याहरन् भयात् ।

उन्होंने उस अलौकिक पराक्रमी पुरुषको धृष्टद्युम्नपर प्रहार करते देख उसे कोई भूत ही समझा; इसीलिये भयके मारे वे कुछ बोल न सके ॥ २५½ ॥

तं तु तेनाभ्युपायेन गमयित्वा यमक्षयम् ॥ २६ ॥
अध्यतिष्ठत तेजस्वी रथं प्राप्य सुदर्शनम् ।
स तस्य भवनाद् राजन् निष्क्रम्यानादयन् दिशः॥२७॥
रथेन शिबिरं प्रायाज्जिघांसुर्द्विषतो बली ।

राजन् ! इस उपायसे धृष्टद्युम्नको यमलोक भेजकर तेजस्वी अश्वत्थामा उसके खेमेसे बाहर निकला और सुन्दर दिखायी देनेवाले अपने रथके पास आकर उसपर सवार हो गया । इसके बाद वह बलवान् वीर अन्य शत्रुओंको मार डालनेकी इच्छा रखकर अपनी गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ रथके द्वारा प्रत्येक शिविरपर आक्रमण करने लगा ॥ २६-२७½ ॥

अपक्रान्ते ततस्तस्मिन् द्रोणपुत्रे महारथे ॥ २८ ॥
सहितै रक्षिभिः सर्वैः प्राणेदुर्योषितस्तदा ।

महारथी द्रोणपुत्रके वहाँसे हट जानेपर एकत्र हुए सम्पूर्ण रक्षकोंसहित धृष्टद्युम्नकी रानियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं ॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा भृशं शोकपरायणाः ॥ २९ ॥
व्याक्रोशन् क्षत्रियाः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य भारत ।

भरतनन्दन ! अपने राजाको मारा गया देख धृष्टद्युम्नकी सेनाके सारे क्षत्रिय अत्यन्त शोकमें मग्न हो आर्तस्वरसे विलाप करने लगे ॥ २९½ ॥

तासां तु तेन शब्देन समीपे क्षत्रियर्षभाः ॥ ३० ॥
क्षिप्रं च समनह्यन्त किमेतदिति चाब्रुवन् ।

स्त्रियोंके रोनेकी आवाज सुनकर आसपासके सारे क्षत्रिय-शिरोमणि वीर तुरंत कवच बाँधकर तैयार हो गये और बोले—'अरे ! यह क्या हुआ ?' ॥ ३०½ ॥

स्त्रियस्तु राजन् वित्रस्ता भारद्वाजं निरीक्ष्य ताः॥ ३१ ॥
अब्रुवन् दीनकण्ठेन क्षिप्रमाद्रवतेति वै ।
राक्षसो वा मनुष्यो वा नैनं जानीमहे वयम् ॥ ३२ ॥
हत्वा पाञ्चालराजानं रथमारुह्य तिष्ठति ।

राजन् ! वे सारी स्त्रियाँ अश्वत्थामाको देखकर बहुत डर गयी थीं; अतः दीन कण्ठसे बोलीं—'अरे ! जल्दी दौड़ो ! जल्दी दौड़ो ! हमारी समझमें नहीं आता कि यह कोई राक्षस है या मनुष्य । देखो, यह पाञ्चालराजकी हत्या करके रथपर चढ़कर खड़ा है' ॥ ३१-३२½ ॥

ततस्ते योधमुख्याश्च सहसा पर्यवारयन् ॥ ३३ ॥
स तानापततः सर्वान् रुद्रास्त्रेण व्यपोथयत् ।

तब उन श्रेष्ठ योद्धाओंने सहसा पहुँचकर अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अश्वत्थामाने पास आते ही उन सबको रुद्रास्त्रसे मार गिराया ॥ ३३½ ॥

धृष्टद्युम्नं च हत्वा स तांश्चैवास्य पदानुगान् ॥ ३४ ॥
अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके ।

इस प्रकार धृष्टद्युम्न और उसके सेवकोंका वध करके अश्वत्थामाने निकटके ही खेमेमें पलंगपर सोये हुए उत्तमौजाको देखा ॥ ३४½ ॥

तमप्याक्रम्य पादेन कण्ठे चोरसि तेजसा ॥ ३५ ॥
तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिंदमम् ।

फिर तो शत्रुदमन उत्तमौजाके भी कण्ठ और छातीको बलपूर्वक पैरसे दबाकर उसने उसी प्रकार पशुकी तरह मार डाला । वह बेचारा भी चीखता-चिल्लाता रह गया था ॥

युधामन्युश्च सम्प्राप्तो मत्वा तं रक्षसा हतम् ॥ ३६ ॥
गदामुद्यम्य वेगेन हृदि द्रौणिमताडयत् ।

उत्तमौजाको राक्षसद्वारा मारा गया समझकर युधामन्यु भी वहाँ आ पहुँचा । उसने बड़े वेगसे गदा उठाकर अश्वत्थामाकी छातीमें प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैनमपातयत् ॥ ३७ ॥
विस्फुरन्तं च पशुवत् तथैवैनममारयत् ।

अश्वत्थामाने झपटकर उसे पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे मारा । वह उसके चंगुलसे छूटनेके लिये बहुतेरा हाथ-पैर मारता रहा; किंतु अश्वत्थामाने उसे भी पशुकी तरह गला घोंटकर मार डाला ॥ ३७½ ॥

तथा स वीरो हत्वा तं ततोऽन्यान् समुपाद्रवत् ॥३८॥
संसुप्तानेव राजेन्द्र तत्र तत्र महारथान् ।
स्फुरतो वेपमानांश्च शमितेव पशून् मखे ॥ ३९ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार युधामन्युका वध करके वीर अश्वत्थामाने अन्य महारथियोंपर भी वहाँ सोते समय ही आक्रमण किया । वे सब भयसे काँपने और छटपटाने लगे । परंतु जैसे हिंसाप्रधान यज्ञमें वधके लिये नियुक्त हुआ पुरुष पशुओंको मार डालता है, उसी प्रकार उसने भी उन्हें मार डाला ॥ ३८-३९ ॥

ततो निस्त्रिंशमादाय जघानान्यान् पृथक् पृथक् ।
भागशो विचरन् मार्गानसियुद्धविशारदः ॥ ४० ॥

तदनन्तर तलवारसे युद्ध करनेमें कुशल अश्वत्थामाने

हाथमें खड्ग लेकर प्रत्येक भागमें विभिन्न मार्गोंसे विचरते हुए वहाँ बारी-बारीसे अन्य वीरोंका भी वध कर डाला ॥ ४० ॥

तथैव गुल्मे सम्प्रेक्ष्य शयानान् मध्यगौल्मिकान् ।
श्रान्तान् व्यस्तायुधान् सर्वान् क्षणेनैव व्यपोथयत् ॥

इसी प्रकार खेमेमें मध्य श्रेणीके रक्षक सैनिक भी थककर सो रहे थे। उनके अस्त्र-शस्त्र अस्त-व्यस्त होकर पड़े थे। उन सबको उस अवस्थामें देखकर अश्वत्थामाने क्षणभरमें मार डाला ॥ ४१ ॥

योधानश्वान् द्विपांश्चैव प्राच्छिनत् स वरासिना ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ४२॥

उसने अपनी अच्छी तलवारसे योद्धाओं, घोड़ों और हाथियोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे, वह कालप्रेरित यमराजके समान जान पड़ता था ॥ ४२ ॥

विस्फुरद्भिश्च तैर्द्रौणिर्निस्त्रिंशस्योद्यमेन च ।
आक्षेपणेन चैवासेस्त्रिधा रक्तोक्षितोऽभवत् ॥ ४३ ॥

मारे जानेवाले योद्धाओंका हाथ-पैर हिलाना, उन्हें मारनेके लिये तलवारको उठाना तथा उसके द्वारा सब ओर प्रहार करना—इन तीन कारणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा खूनसे नहा गया था ॥ ४३ ॥

तस्य लोहितरक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः ।
अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः ॥ ४४ ॥

वह खूनसे रँग गया था। जूझते हुए उस वीरकी तलवार चमक रही थी। उस समय उसका आकार मानवेतर प्राणीके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था ॥ ४४ ॥

ये त्वजाग्रन्त कौरव्य तेऽपि शब्देन मोहिताः ।
निरीक्ष्यमाणा अन्योन्यं दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रविव्यथुः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन ! जो जाग रहे थे, वे भी उस कोलाहलसे किंकर्तव्यविमूढ हो गये थे। परस्पर देखे जाते हुए वे सभी सैनिक अश्वत्थामाको देख-देखकर व्यथित हो रहे थे ॥

तद् रूपं तस्य ते दृष्ट्वा क्षत्रियाः शत्रुकर्षिणः ।
राक्षसं मन्यमानास्तं नयनानि न्यमीलयन् ॥ ४६ ॥

वे शत्रुसूदन क्षत्रिय अश्वत्थामाका वह रूप देख उसे राक्षस समझकर आँखें मूँद लेते थे ॥ ४६ ॥

स घोररूपो व्यचरत् कालवच्छिविरे ततः ।
अपश्यद् द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥ ४७ ॥

वह भयानक रूपधारी द्रोणकुमार सारे शिविरमें कालके समान विचरने लगा। उसने द्रौपदीके पाँचों पुत्रों और मरनेसे बचे हुए सोमकोंको देखा ॥ ४७ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता धनुर्हस्ता महारथाः ।
धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा द्रौपदेया विशाम्पते ॥ ४८ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नको मारा गया सुनकर द्रौपदीके पाँचों महारथी पुत्र उस शब्दसे भयभीत हो हाथमें धनुष लिये आगे बढ़े ॥ ४८ ॥

अवाकिरञ्शरव्रातैर्भारद्वाजमभीतवत् ।
ततस्तेन निनादेन सम्प्रबुद्धाः प्रभद्रकाः ॥ ४९ ॥
शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रोणपुत्रं समार्दयन् ।

उन्होंने निर्भयसे होकर अश्वत्थामापर बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तदनन्तर वह कोलाहल सुनकर वीर प्रभद्रकगण जाग उठे। शिखण्डी भी उनके साथ हो लिया। उन सबने द्रोणपुत्रको पीड़ा देना आरम्भ किया ४९½

भारद्वाजः स तान् दृष्ट्वा शरवर्षाणि वर्षतः ॥ ५० ॥
ननाद बलवन्नादं जिघांसुस्तान् महारथान् ।

उन महारथियोंको बाणोंकी वर्षा करते देख अश्वत्थामा उन्हें मार डालनेकी इच्छासे जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ५०½ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ५१ ॥
अवरुह्य रथोपस्थात् त्वरमाणोऽभिदुद्रुवे ।
सहस्रचन्द्रविमलं गृहीत्वा चर्म संयुगे ॥ ५२ ॥
खड्गं च विमलं दिव्यं जातरूपपरिष्कृतम् ।

तदनन्तर पिताके वधका स्मरण करके वह अत्यन्त कुपित हो उठा और रथकी बैठकसे उतरकर सहस्रों चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकीली ढाल और सुवर्णभूषित दिव्य एवं निर्मल खड्ग लेकर युद्धमें बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर दौड़ा ॥ ५१-५२½ ॥

द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्यधमद् बली ॥ ५३ ॥
ततः स नरशार्दूलः प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
कुक्षिदेशेऽवधीद् राजन् स हतो न्यपतद् भुवि॥ ५४ ॥

उस बलवान् वीरने द्रौपदीके पुत्रोंपर आक्रमण करके उन्हें खड्गसे छिन्न-भिन्न कर दिया। राजन् ! उस समय पुरुषसिंह अश्वत्थामाने उस महासमरमें प्रतिविन्ध्यको उसकी कोखमें तलवार भोंककर मार डाला। वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५३-५४ ॥

प्रासेन विद्ध्वा द्रौणिं तु सुतसोमः प्रतापवान् ।
पुनश्चासिं समुद्यम्य द्रोणपुत्रमुपाद्रवत् ॥ ५५ ॥

तत्पश्चात् प्रतापी सुतसोमने द्रोणकुमारको पहले प्राससे घायल करके फिर तलवार उठाकर उसपर धावा किया ॥

सुतसोमस्य सासिं तं बाहुं छित्त्वा नरर्षभ ।
पुनरप्याहनत् पार्श्वे स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ ५६ ॥

नरश्रेष्ठ ! तब अश्वत्थामाने तलवारसहित सुतसोमकी बाँह काटकर पुनः उसकी पसलीमें आघात किया। इससे उसकी छाती फट गयी और वह धराशायी हो गया ॥ ५६॥

नाकुलिस्तु शतानीको रथचक्रेण वीर्यवान् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन वक्षस्येनमताडयत् ॥ ५७ ॥

इसके बाद नकुलके पराक्रमी पुत्र शतानीकने अपनी दोनों भुजाओंसे रथचक्रको उठाकर उसके द्वारा बड़े वेगसे अश्वत्थामाकी छातीपर प्रहार किया ॥ ५७ ॥

अताडयच्छतानीकं मुक्तचक्रं द्विजस्तु सः ।
स विह्वलो ययौ भूमिं ततोऽस्यापाहरच्छिरः ॥ ५८ ॥

शतानीकने जब चक्र चला दिया, तब ब्राह्मण अश्व-

त्थामाने भी उसपर गहरा आघात किया । इससे व्याकुल होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा । इतनेहीमें अश्वत्थामाने उसका सिर काट लिया ॥ ५८ ॥

श्रुतकर्मा तु परिघं गृहीत्वा समताडयत् ।
अभिद्रुत्य ययौ द्रौणिं सव्ये सफलके भृशम् ॥ ५९ ॥

अब श्रुतकर्मा परिघ लेकर अश्वत्थामाकी ओर दौड़ा। उसने उसके ढालयुक्त बायें हाथमें भारी चोट पहुँचायी ॥

स तु तं श्रुतकर्माणमास्ये जघ्ने वरासिना ।
स हतो न्यपतद् भूमौ विमूढो विकृताननः ॥ ६० ॥

अश्वत्थामाने अपनी तेज तलवारसे श्रुतकर्माके मुखपर आघात किया । वह चोट खाकर बेहोश हो पृथ्वीपर गिर पड़ा । उस समय उसका मुख विकृत हो गया था ॥ ६० ॥

तेन शब्देन वीरस्तु श्रुतकीर्तिर्महारथः ।
अश्वत्थामानमासाद्य शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ६१ ॥

वह कोलाहल सुनकर वीर महारथी श्रुतकीर्ति अश्वत्थामाके पास आकर उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥६१॥

तस्यापि शरवर्षाणि चर्मणा प्रतिवार्य सः ।
सकुण्डलं शिरः कायाद् भ्राजमानमुपाहरत् ॥ ६२ ॥

उसकी बाण-वर्षाको ढालसे रोककर अश्वत्थामाने उसके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकको धड़से अलग कर दिया ६२

ततो भीष्मनिहन्ता तं सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
अहनत् सर्वतो वीरं नानाप्रहरणैर्बली ॥ ६३ ॥
शिलीमुखेन चान्येन भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।

तदनन्तर समस्त प्रभद्रकोंसहित बलवान् भीष्महन्ता शिखण्डी नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा अश्वत्थामापर सब ओरसे प्रहार करने लगा तथा एक दूसरे बाणसे उसने उसकी दोनों भौंहोंके बीचमें आघात किया ॥ ६३½ ॥

स तु क्रोधसमाविष्टो द्रोणपुत्रो महाबलः ॥ ६४ ॥
शिखण्डिनं समासाद्य द्विधा चिच्छेद सोऽसिना।

तब महाबली द्रोणपुत्रने क्रोधके आवेशमें आकर शिखण्डीके पास जा अपनी तलवारसे उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ ६४½ ॥

शिखण्डिनं ततो हत्वा क्रोधाविष्टः परंतपः ॥ ६५ ॥
प्रभद्रकगणान् सर्वानभिदुद्राव वेगवान् ।
यच्च शिष्टं विराटस्य बलं तु भृशमाद्रवत् ॥ ६६ ॥

क्रोधसे भरे हुए शत्रुसंतापी अश्वत्थामाने इस प्रकार शिखण्डीका वध करके समस्त प्रभद्रकोंपर बड़े वेगसे धावा किया । साथ ही, राजा विराटकी जो सेना शेष थी, उसपर भी जोरसे चढ़ाई कर दी ॥ ६५-६६ ॥

द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि ।
चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः ॥ ६७ ॥

उस महाबली वीरने द्रुपदके पुत्रों, पौत्रों और सुहृदोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उनका घोर संहार मचा दिया ॥६७॥

अन्यानन्यांश्च पुरुषानभिसृत्याभिसृत्य च ।
न्यकृन्तदसिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः ॥ ६८ ॥

तलवारके पैंतरोंमें कुशल द्रोणपुत्रने दूसरे-दूसरे पुरुषोंके भी निकट जाकर तलवारसे ही उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६८ ॥

कालीं रक्तास्यनयनां रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।
रक्ताम्बरधरामेकां पाशहस्तां कुटुम्बिनीम् ॥ ६९ ॥
ददृशुः कालरात्रिं ते गायमानामवस्थिताम् ।
नराश्वकुञ्जरान् पाशैर्बद्ध्वा घोरैः प्रतस्थुषीम् ॥ ७० ॥

उस समय पाण्डव-पक्षके योद्धाओंने मूर्तिमती कालरात्रिको देखा, जिसके शरीरका रंग काला था, मुख और नेत्र लाल थे । वह लाल फूलोंकी माला पहने और लाल चन्दन लगाये हुए थी । उसने लाल रंगकी ही साड़ी पहन रक्खी थी । वह अपने ढंगकी अकेली थी और हाथमें पाश लिये हुए थी । उसकी सखियोंका समुदाय भी उसके साथ था । वह गीत गाती हुई खड़ी थी और भयंकर पाशोंद्वारा मनुष्यों, घोड़ों एवं हाथियोंको बाँधकर लिये जाती थी ॥ ६९-७० ॥

वहन्तीं विविधान् प्रेतान् पाशबद्धान् विमूर्धजान्।
तथैव च सदा राजन् न्यस्तशस्त्रान् महारथान्॥ ७१ ॥
स्वप्ने सुप्तान्नयन्तीं तां रात्रिष्वन्यासु मारिष ।
ददृशुर्योधमुख्यास्ते घ्नन्तं द्रौणिं च सर्वदा ॥ ७२ ॥

माननीय नरेश ! मुख्य-मुख्य योद्धा अन्य रात्रियोंमें भी सपनेमें उस कालरात्रिको देखते थे । राजन् ! वह सदा नाना प्रकारके केशरहित प्रेतोंको अपने पाशोंमें बाँधकर लिये जाती दिखायी देती थी, इसी प्रकार हथियार डालकर सोये हुए महारथियोंको भी लिये जाती हुई स्वप्नमें दृष्टिगोचर होती थी। वे योद्धा सबका संहार करते हुए द्रोणकुमारको भी सदा सपनोंमें देखा करते थे ॥ ७१-७२ ॥

यतः प्रभृति संग्रामः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
ततः प्रभृति तां कन्यामपश्यन् द्रौणिमेव च ॥ ७३ ॥
तांस्तु दैवहतान् पूर्वं पश्चाद् द्रौणिर्न्यपातयत् ।
त्रासयन् सर्वभूतानि विनदन् भैरवान् रवान् ॥ ७४ ॥

जबसे कौरव-पाण्डव सेनाओंका संग्राम आरम्भ हुआ था, तभीसे वे योद्धा कन्यारूपिणी कालरात्रिको और कालरूपधारी अश्वत्थामाको भी देखा करते थे । पहलेसे ही दैवके मारे हुए उन वीरोंका द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पीछे वध किया था । वह अश्वत्थामा भयानक स्वरसे गर्जना करके समस्त प्राणियोंको भयभीत कर रहा था ॥ ७३-७४ ॥

तदनुस्मृत्य ते वीरा दर्शनं पूर्वकालिकम् ।
इदं तदित्यमन्यन्त दैवेनोपनिपीडिताः ॥ ७५ ॥

वे दैवपीडित वीरगण पूर्वकालके देखे हुए सपनेको याद करके ऐसा मानने लगे कि 'यह वही स्वप्न इस रूपमें सत्य हो रहा है' ॥ ७५ ॥

ततस्तेन निनादेन प्रत्यबुद्ध्यन्त धन्विनः ।
शिबिरे पाण्डवेयानां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७६ ॥

तदनन्तर अश्वत्थामाके उस सिंहनादसे पाण्डवोंके शिबिरमें सैकड़ों और हजारों धनुर्धर वीर जाग उठे ॥ ७६ ॥

सोऽच्छिनत् कस्यचित् पादौ जघनं चैव कस्यचित् ।
कांश्चिद् बिभेद पार्श्वेषु कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ७७ ॥

उस समय कालप्रेरित यमराजके समान उसने किसीके पैर काट लिये, किसीकी कमर टूक-टूक कर दी और किन्हींकी पसलियोंमें तलवार भोंककर उन्हें चीर डाला ॥ ७७ ॥

अत्युग्रप्रतिपिष्टैश्च नदद्भिश्च भृशोत्कटैः ।
गजाश्वमथितैश्चान्यैर्मही कीर्णाभवत् प्रभो ॥ ७८ ॥

वे सब-के-सब बड़े भयानक रूपसे कुचल दिये गये थे, अतः उन्मत्त-से होकर जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते थे। इसी प्रकार छूटे हुए घोड़ों और हाथियोंने भी अन्य बहुत-से योद्धाओंको कुचल दिया था। प्रभो! उन सबकी लाशोंसे धरती पट गयी थी ॥ ७८ ॥

क्रोशतां किमिदं कोऽयं कः शब्दः किं नु किं कृतम् ।
एवं तेषां तथा द्रौणिरन्तकः समपद्यत ॥ ७९॥

घायल वीर चिल्ला चिल्लाकर कहते थे कि 'यह क्या है? यह कौन है? यह कैसा कोलाहल हो रहा है? यह क्या कर डाला?' इस प्रकार चीखते हुए उन सब योद्धाओंके लिये द्रोणकुमार अश्वत्थामा काल बन गया था ॥ ७९ ॥

अपेतशस्त्रसन्नाहान् सन्नद्धान् पाण्डुसृंजयान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय द्रौणिः प्रहरतां वरः ॥ ८० ॥

पाण्डवों और सृंजयोंमेंसे जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र और कवच उतार दिये थे तथा जिन लोगोंने पुनः कवच बाँध लिये थे, उन सबको प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्रने मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ८० ॥

ततस्तच्छब्दवित्रस्ता उत्पतन्तो भयातुराः ।
निद्रान्धा नष्टसंज्ञाश्च तत्र तत्र निलिल्यिरे ॥ ८१ ॥

जो लोग नींदके कारण अंधे और अचेत-से हो रहे थे, वे उसके शब्दसे चौंककर उछल पड़े; किंतु पुनः भयसे व्याकुल हो जहाँ-तहाँ छिप गये ॥ ८१ ॥

ऊरुस्तम्भगृहीताश्च कश्मलाभिहतौजसः ।
विनदन्तो भृशं त्रस्ताः समासीदन् परस्परम् ॥ ८२ ॥

उनकी जाँघें अकड़ गयी थीं। मोहवश उनका बल और उत्साह मारा गया था। वे भयभीत हो जोर-जोरसे चीखते हुए एक दूसरेसे लिपट जाते थे ॥ ८२ ॥

ततो रथं पुनर्द्रौणिरास्थितो भीमनिःस्वनम् ।
धनुष्पाणिः शरैरन्यान् प्रैषयद् वै यमक्षयम् ॥ ८३ ॥

इसके बाद द्रोणकुमार अश्वत्थामा पुनः भयानक शब्द करनेवाले अपने रथपर सवार हुआ और हाथमें धनुष ले बाणोंद्वारा दूसरे योद्धाओंको यमलोक भेजने लगा ॥ ८३ ॥

पुनरुत्पततश्चापि दूरादपि नरोत्तमान् ।
शूरान् सम्पततश्चान्यान् कालरात्र्यै न्यवेदयत् ॥ ८४॥

अश्वत्थामा पुनः उछलने और अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले दूसरे-दूसरे नरश्रेष्ठ शूरवीरोंको दूरसे भी मारकर कालरात्रिके हवाले कर देता था ॥ ८४ ॥

तथैव स्यन्दनाग्रेण प्रमथन् स विधावति ।
शरवर्षैश्च विविधैरवर्षच्छात्रवांस्ततः ॥ ८५ ॥

वह अपने रथके अग्रभागसे शत्रुओंको कुचलता हुआ सब ओर दौड़ लगाता और नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षासे शत्रुसैनिकोंको घायल करता था ॥ ८५ ॥

पुनश्च सुविचित्रेण शतचन्द्रेण चर्मणा ।
तेन चाकाशवर्णेन तथाचरत सोऽसिना ॥ ८६ ॥

फिर वह सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त विचित्र ढाल और आकाशके रंगवाली चमचमाती तलवार लेकर सब ओर विचरने लगा ॥ ८६ ॥

तथा च शिबिरं तेषां द्रौणिराहवदुर्मदः ।
व्यक्षोभयत राजेन्द्र महाह्रदमिव द्विपः ॥ ८७ ॥

राजेन्द्र! रणदुर्मद द्रोणकुमारने उन शत्रुओंके शिविरको उसी प्रकार मथ डाला, जैसे कोई गजराज किसी विशाल सरोवरको विक्षुब्ध कर डालता है ॥ ८७ ॥

उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन् विचेतसः ।
निद्रार्ताश्च भयार्ताश्च व्यधावन्त ततस्ततः ॥ ८८ ॥

राजन्! उस मार-काटके कोलाहलसे निद्रामें अचेत पड़े हुए योद्धा चौंककर उछल पड़ते और भयसे व्याकुल हो इधर-उधर भागने लगते थे ॥ ८८ ॥

विस्वरं चुक्रुशुश्चान्ये बह्वबद्धं तथा वदन् ।
न च स्म प्रत्यपद्यन्त शस्त्राणि वसनानि च ॥ ८९ ॥

कितने ही योद्धा गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते और बहुत-सी उटपटाँग बातें बकने लगते थे। वे अपने अस्त्र-शस्त्र तथा वस्त्रोंको भी नहीं ढूँढ़ पाते थे ॥ ८९ ॥

विमुक्तकेशाश्चाप्यन्ये नाभ्यजानन् परस्परम् ।
उत्पतन्तोऽपतञ्श्रान्ताः केचित् तत्राभ्रमंस्तदा ॥ ९० ॥

दूसरे बहुत-से योद्धा बाल बिखेरे हुए भागते थे। उस दशामें वे एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे। कोई उछलते हुए भागते और थककर गिर जाते थे तथा कोई उसी स्थानपर चक्कर काटते रहते थे ॥ ९० ॥

पुरीषमसृजन् केचित् केचिन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
बन्धनानि च राजेन्द्र संछिद्य तुरगा द्विपाः ॥ ९१ ॥
समं पर्यपतंश्चान्ये कुर्वन्तो महदाकुलम् ।

कितने ही मलत्याग करने लगे। कितनोंके पेशाब झड़ने लगे। राजेन्द्र! दूसरे बहुत से घोड़े और हाथी बन्धन तोड़कर एक साथ ही सब ओर दौड़ने और लोगोंको अत्यन्त व्याकुल करने लगे ॥ ९१½ ॥

तत्र केचिन्नरा भीता व्यलीयन्त महीतले ॥ ९२ ॥
तथैव तान् निपतितानपिंषन् गजवाजिनः ।

कितने ही योद्धा भयभीत हो पृथ्वीपर छिपे पड़े थे। उन्हें उसी अवस्थामें भागते हुए घोड़ों और हाथियोंने अपने पैरोंसे कुचल दिया ॥ ९२½ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रक्षांसि पुरुषर्षभ ॥ ९३ ॥
हृष्टानि व्यनदन्नुच्चैर्मुदा भरतसत्तम ।

पुरुषप्रवर! भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार जब वह मारकाट

मची हुई थी, उस समय हर्षमें भरे हुए राक्षस बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते थे ॥ ९३½ ॥

स शब्दः पूरितो राजन् भूतसंघैर्मुदायुतैः ॥ ९४ ॥
अपूरयद् दिशः सर्वा दिवं चातिमहान् स्वनः ।

राजन्! आनन्दमग्न हुए भूतसमुदायोंके द्वारा किया हुआ वह महान् कोलाहल सम्पूर्ण दिशाओं तथा आकाशमें गूँज उठा ॥ ९४½ ॥

तेषामार्तरवं श्रुत्वा वित्रस्ता गजवाजिनः ॥ ९५ ॥
मुक्ताः पर्यपतन् राजन् मृद्नन्तः शिबिरे जनम् ।

राजन्! मारे जानेवाले योद्धाओंका आर्तनाद सुनकर हाथी और घोड़े भयसे थर्रा उठे और बन्धनमुक्त हो शिबिरमें रहनेवाले लोगोंको रौंदते हुए चारों ओर दौड़ लगाने लगे ॥ ९५½ ॥

तैस्तत्र परिधावद्भिश्चरणोदीरितं रजः ॥ ९६ ॥
अकरोच्छिबिरे तेषां रजन्यां द्विगुणं तमः ।

उन दौड़ते हुए घोड़ों और हाथियोंने अपने पैरोंसे जो धूल उड़ायी थी, उसने पाण्डवोंके शिबिरमें रात्रिके अन्धकारको दुगुना कर दिया ॥ ९६½ ॥

तस्मिंस्तमसि संजाते प्रमूढाः सर्वतो जनाः ॥ ९७ ॥
नाजानन् पितरः पुत्रान् भ्रातॄन् भ्रातर एव च ।

वह घोर अन्धकार फैल जानेपर वहाँ सब लोगोंपर मोह छा गया। उस समय पिता पुत्रोंको और भाई भाइयोंको नहीं पहचान पाते थे ॥ ९७½ ॥

गजा गजानतिक्रम्य निर्मनुष्या हया हयान् ॥ ९८ ॥
अताडयंस्तथाभञ्जंस्तथामृद्नंश्च भारत ।

भारत! हाथी हाथियोंपर और बिना सवारके घोड़े घोड़ोंपर आक्रमण करके एक दूसरेपर चोट करने लगे। उन्होंने अङ्ग-भंग करके एक दूसरेको रौंद डाला ॥ ९८½ ॥

ते भग्नाः प्रपतन्ति स्म निघ्नन्तश्च परस्परम् ॥ ९९ ॥
न्यपातयंस्तथा चान्यान् पातयित्वा तदापिषन् ।

परस्पर आघात करते हुए वे हाथी, घोड़े स्वयं भी घायल होकर गिर जाते थे तथा दूसरोंको भी गिरा देते और गिराकर उनका कचूमर निकाल देते थे ॥ ९९½ ॥

विचेतसः सनिद्राश्च तमसा चावृता नराः ॥ १०० ॥
जघ्नुः स्वानेव तत्राथ कालेनैव प्रचोदिताः ।

कितने ही मनुष्य निद्रामें अचेत पड़े थे और घोर अन्धकारसे घिर गये थे। वे सहसा उठकर कालसे प्रेरित हो आत्मीय जनोंका ही वध करने लगे ॥ १००½ ॥

त्यक्त्वा द्वाराणि च द्वाःस्थास्तथा गुल्मानि गौल्मिकाः ॥
प्राद्रवन्त यथाशक्ति कांदिशीका विचेतसः ।

द्वारपाल दरवाजोंको और तम्बूकी रक्षा करनेवाले सैनिक तम्बुओंको छोड़कर यथाशक्ति भागने लगे। वे सब-के-सब अपनी सुध-बुध खो बैठे थे और यह भी नहीं जानते थे कि 'उन्हें किस दिशामें भागकर जाना है' ॥ १०१½ ॥

विप्रणष्टाश्च तेऽन्योन्यं नाजानन्त तथा विभो ॥ १०२ ॥
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति दैवोपहतचेतसः ।

प्रभो! वे भागे हुए सैनिक एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे। दैववश उनकी बुद्धि मारी गयी थी। वे 'हा तात! हा पुत्र!' कहकर अपने स्वजनोंको पुकार रहे थे ॥ १०२½ ॥

पलायतां दिशस्तेषां स्वानप्युत्सृज्य बान्धवान् ॥ १०३ ॥
गोत्रनामभिरन्योन्यमाक्रन्दन्त ततो जनाः ।
हाहाकारं च कुर्वाणाः पृथिव्यां शेरते परे ॥ १०४ ॥

अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागते हुए योद्धाओंके नाम और गोत्रको पुकार-पुकारकर लोग परस्पर बुला रहे थे। कितने ही मनुष्य हाहाकार करते हुए धरतीपर पड़ गये थे ॥ १०३-१०४ ॥

तान् बुद्ध्वा रणमत्तोऽसौ द्रोणपुत्रो व्यपोथयत् ।
तत्रापरे वध्यमाना मुहुर्मुहुरचेतसः ॥ १०५ ॥
शिबिरान् निष्पतन्ति स्म क्षत्रिया भयपीडिताः ।

युद्धके लिये उन्मत्त हुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उन सबको पहचान-पहचानकर मार गिराता था। बारंबार उसकी मार खाते हुए दूसरे बहुत-से क्षत्रिय भयसे पीड़ित और अचेत हो शिबिरसे बाहर निकलने लगे ॥ १०५½ ॥

तांस्तु निष्पतितांस्त्रस्तान् शिबिराज्जीवितैषिणः ॥ १०६ ॥
कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः ।

प्राण बचानेकी इच्छासे भयभीत हो शिबिरसे निकले हुए उन क्षत्रियोंको कृतवर्मा और कृपाचार्यने दरवाजेपर ही मार डाला ॥ १०६½ ॥

विस्रस्तयन्त्रकवचान् मुक्तकेशान् कृताञ्जलीन् ॥ १०७ ॥
वेपमानान् क्षितौ भीतान् नैव कांश्चिदमुञ्चताम् ।
नामुच्यत तयोः कश्चिन्निष्क्रान्तः शिबिराद् बहिः ॥

उनके यन्त्र और कवच गिर गये थे। वे बाल खोले, हाथ जोड़े, भयभीत हो थरथर काँपते हुए पृथ्वीपर खड़े थे, किंतु उन दोनोंने उनमेंसे किसीको भी जीवित नहीं छोड़ा। शिबिरसे निकला हुआ कोई भी क्षत्रिय उन दोनोंके हाथसे जीवित नहीं छूट सका ॥ १०७-१०८ ॥

कृपश्चैव महाराज हार्दिक्यश्चैव दुर्मतिः ।
भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम् ॥ १०९ ॥
त्रिषु देशेषु ददतुः शिबिरस्य हुताशनम् ।

महाराज! कृपाचार्य तथा दुर्बुद्धि कृतवर्मा दोनों ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका अधिक-से-अधिक प्रिय करना चाहते थे; अतः उन्होंने उस शिबिरमें तीन ओरसे आग लगा दी ॥ १०९½ ॥

ततः प्रकाशे शिबिरे खड्गेन पितृनन्दनः ॥ ११० ॥
अश्वत्थामा महाराज व्यचरत् कृतहस्तवत् ।

महाराज! उससे सारे शिबिरमें उजाला हो गया और उस उजालेमें पिताको आनन्दित करनेवाला अश्वत्थामा हाथमें खड्ग लिये एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बेखटके विचरने लगा ॥ ११०½ ॥

कांश्चिदापततो वीरानपरांश्चैव धावतः ॥ १११ ॥

व्ययोजयत खड्गेन प्राणैर्द्विजवरोत्तमः ।

उस समय कुछ वीर क्षत्रिय आक्रमण कर रहे थे और दूसरे पीठ दिखाकर भागे जा रहे थे । ब्राह्मणशिरोमणि अश्वत्थामाने उन दोनों ही प्रकारके योद्धाओंको तलवारसे मारकर प्राणहीन कर दिया ॥ १११½ ॥

कांश्चिद् योधान् स खड्गेन मध्ये संछिद्य वीर्यवान् ॥ ११२॥
अपातयद् द्रोणपुत्रः संरब्धस्तिलकाण्डवत् ।

क्रोधसे भरे हुए शक्तिशाली द्रोणपुत्रने कुछ योद्धाओंको तिलके डंठलोंकी भाँति बीचसे ही तलवारसे काट गिराया ॥

निनदद्भिर्भृशायस्तैर्नराश्वद्विरदोत्तमैः ॥ ११३॥
पतितैरभवत् कीर्णा मेदिनी भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त घायल हो पृथ्वीपर गिरकर चिल्लाते हुए मनुष्यों, घोड़ों और बड़े-बड़े हाथियोंसे वहाँकी भूमि ढँक गयी थी ॥ ११३½ ॥

मानुषाणां सहस्रेषु हतेषु पतितेषु च ॥ ११४॥
उदतिष्ठन् कबन्धानि बहून्युत्थाय चापतन् ।

सहस्रों मनुष्य मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े थे । उनमेंसे बहुतेरे कबन्ध (धड़) उठकर खड़े हो जाते और पुनः गिर पड़ते थे ॥ ११४½ ॥

सायुधान् साङ्गदान् बाहून् विचकर्त शिरांसि च ॥ ११५॥
हस्तिहस्तोपमानूरून् हस्तान् पादांश्च भारत ।

भारत ! उसने आयुधों और भुजबंदोंसहित बहुत-सी भुजाओं तथा मस्तकोंको काट डाला । हाथीकी सूँडके समान दिखायी देनेवाली जाँघों, हाथों और पैरोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ११५½ ॥

पृष्ठच्छिन्नान् पार्श्वच्छिन्नाञ्शिरश्छिन्नांस्तथा परान् ११६
स महात्माकरोद् द्रौणिः कांश्चिच्चापि पराङ्मुखान् ।

महामनस्वी द्रोणकुमारने किन्हींकी पीठ काट डाली, किन्हीं-की पसलियाँ उड़ा दीं, किन्हींके सिर उतार लिये तथा कितनोंको उसने मार भगाया ॥ ११६½ ॥

मध्यदेशे नरानन्यांश्चिच्छेदान्यांश्च कर्णतः ॥ ११७॥
अंसदेशे निहत्यान्यान् काये प्रावेशयच्छिरः ।

बहुत-से मनुष्योंको अश्वत्थामाने कटिभागसे ही काट डाला और कितनोंको कर्णहीन कर दिया । दूसरे-दूसरे योद्धाओंके कंधेपर चोट करके उनके सिरको धड़में घुसेड़ दिया ॥ ११७½ ॥

एवं विचरतस्तस्य निघ्नतः सुबहून् नरान् ॥ ११८॥
तमसा रजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना ।

इस प्रकार अनेकों मनुष्योंका संहार करता हुआ वह शिविरमें विचरण करने लगा । उस समय दारुण दिखायी देनेवाली वह रात्रि अन्धकारके कारण और भी घोर तथा भयानक प्रतीत होती थी ॥ ११८½ ॥

किञ्चित्प्राणैश्च पुरुषैर्हतैश्चान्यैः सहस्रशः ॥ ११९॥
बहुना च गजाश्वेन भूरभूद् भीमदर्शना ।

मरे और अधमरे सहस्रों मनुष्यों और बहुसंख्यक हाथी-घोड़ोंसे पटी हुई भूमि बड़ी डरावनी दिखायी देती थी ॥

यक्षरक्षःसमाकीर्णे रथाश्वद्विपदारुणे ॥ १२०॥
क्रुद्धेन द्रोणपुत्रेण संछिन्नाः प्रापतन् भुवि ।

यक्षों तथा राक्षसोंसे भरे हुए एवं रथों, घोड़ों और हाथियोंसे भयंकर दिखायी देनेवाले रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणपुत्रके हाथोंसे कटकर कितने ही क्षत्रिय पृथ्वीपर पड़े थे ॥

भ्रातॄनन्ये पितॄनन्ये पुत्रानन्ये विचुक्रुशुः ॥ १२१॥
केचिदूचुर्न तत् क्रुद्धैर्धार्तराष्ट्रैः कृतं रणे ।
यत् कृतं नः प्रसुप्तानां रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ॥ १२२॥

कुछ लोग भाइयोंको, कुछ पिताओंको और दूसरे लोग पुत्रोंको पुकार रहे थे । कुछ लोग कहने लगे—'भाइयो ! रोषमें भरे हुए धृतराष्ट्रके पुत्रोंने भी रणभूमिमें हमारी वैसी दुर्गति नहीं की थी, जो आज इन क्रूरकर्मा राक्षसोंने हम सोये हुए लोगोंकी कर डाली है ॥ १२१-१२२ ॥

असांनिध्याद्धि पार्थानामिदं नः कदनं कृतम् ।
न चासुरैर्न गन्धर्वैर्न च यक्षैर्न च राक्षसैः ॥ १२३॥
शक्यो विजेतुं कौन्तेयो गोप्ता यस्य जनार्दनः ।
ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तः सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १२४॥

'आज कुन्तीके पुत्र हमारे पास नहीं हैं, इसीलिये हम-लोगोंका यह संहार किया गया है । कुन्तीपुत्र अर्जुनको तो असुर, गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षस कोई भी नहीं जीत सकते; क्योंकि साक्षात् श्रीकृष्ण उनके रक्षक हैं । वे ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय तथा सम्पूर्ण भूतोंपर दया करनेवाले हैं ॥

न च सुप्तं प्रमत्तं वा न्यस्तशस्त्रं कृताञ्जलिम् ।
धावन्तं मुक्तकेशं वा हन्ति पार्थो धनंजयः ॥ १२५॥

'कुन्तीनन्दन अर्जुन सोये हुए, असावधान, शस्त्रहीन, हाथ जोड़े हुए, भागते हुए अथवा बाल खोलकर दीनता दिखाते हुए मनुष्यको कभी नहीं मारते हैं ॥ १२५ ॥

तदिदं नः कृतं घोरं रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ।
इति लालप्यमानाः स्म शेरते बहवो जनाः ॥ १२६॥

'आज क्रूरकर्मा राक्षसोंद्वारा हमारी यह भयंकर दुर्दशा की गयी है ।' इस प्रकार विलाप करते हुए बहुत-से मनुष्य रणभूमिमें सो रहे थे ॥ १२६ ॥

स्तनतां च मनुष्याणामपरेषां च कूजताम् ।
ततो मुहूर्तात् प्राशाम्यत् स शब्दस्तुमुलो महान् ॥ १२७॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें कराहते और विलाप करते हुए मनुष्योंका वह भयंकर कोलाहल शान्त हो गया ॥ १२७ ॥

शोणितव्यतिषिक्तायां वसुधायां च भूमिप ।
तद्रजस्तुमुलं घोरं क्षणेनान्तरधीयत ॥ १२८॥

राजन् ! खूनसे भीगी हुई पृथ्वीपर गिरकर वह भयानक धूल क्षणभरमें अदृश्य हो गयी ॥ १२८ ॥

स चेष्टमानानुद्विग्नान् निरुत्साहान् सहस्रशः ।

न्यपातयन्नरान् क्रुद्धः पशून् पशुपतिर्यथा ॥१२९॥

जैसे प्रलयके समय क्रोधमें भरे हुए पशुपति रुद्र समस्त पशुओं (प्राणियों) का संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार कुपित हुए अश्वत्थामाने ऐसे सहस्रों मनुष्योंको भी मार डाला, जो किसी प्रकार प्राण बचानेके प्रयत्नमें लगे हुए थे, एकदम घबराये हुए थे और सारा उत्साह खो बैठे थे ॥१२९॥

अन्योन्यं सम्परिष्वज्य शयानान् द्रवतोऽपरान् ।
संलीनान् युद्ध्यमानांश्च सर्वान् द्रौणिरपोथयत् ॥१३०॥

कुछ लोग एक दूसरेसे लिपटकर सो रहे थे, दूसरे भाग रहे थे, तीसरे छिप गये थे और चौथी श्रेणीके लोग जूझ रहे थे, उन सबको द्रोणकुमारने वहाँ मार गिराया ॥

दह्यमाना हुताशेन वध्यमानाश्च तेन ते ।
परस्परं तदा योधा अनयन् यमसादनम् ॥१३१॥

एक ओर लोग आगसे जल रहे थे और दूसरी ओर अश्वत्थामाके हाथसे मारे जाते थे, ऐसी दशामें वे सब योद्धा स्वयं ही एक दूसरेको यमलोक भेजने लगे ॥ १३१ ॥

तस्या रजन्यास्त्वर्धेन पाण्डवानां महद् बलम् ।
गमयामास राजेन्द्र द्रौणिर्यमनिवेशनम् ॥१३२॥

राजेन्द्र ! उस रातका आधा भाग बीतते-बीतते द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाको यमराजके घर भेज दिया ॥ १३२ ॥

निशाचराणां सत्त्वानां रात्रिः सा हर्षवर्धिनी ।
आसीन्नरगजाश्वानां रौद्री क्षयकरी भृशम् ॥१३३॥

वह भयानक रात्रि निशाचर प्राणियोंका हर्ष बढ़ानेवाली थी और मनुष्यों, घोड़ों तथा हाथियोंके लिये अत्यन्त विनाशकारिणी सिद्ध हुई ॥ १३३ ॥

तत्रादृश्यन्त रक्षांसि पिशाचाश्च पृथग्विधाः ।
खादन्तो नरमांसानि पिबन्तः शोणितानि च ॥१३४॥

वहाँ नाना प्रकारकी आकृतिवाले बहुत-से राक्षस और पिशाच मनुष्योंके मांस खाते और खून पीते दिखायी देते थे॥

करालाः पिङ्गलाश्चैव शैलदन्ता रजस्वलाः ।
जटिला दीर्घशङ्खाश्च पञ्चपादा महोदराः ॥१३५॥

वे बड़े ही विकराल और पिङ्गल वर्णके थे । उनके दाँत पहाड़ों-जैसे जान पड़ते थे । वे सारे अङ्गोंमें धूल लपेटे और सिरपर जटा रखाये हुए थे । उनके माथेकी हड्डी बहुत बड़ी थी । उनके पाँच-पाँच पैर और बड़े-बड़े पेट थे ॥ १३५ ॥

पश्चादङ्गुलयो रूक्षा विरूपा भैरवस्वनाः ।
घण्टाजालावसक्ताश्च नीलकण्ठा विभीषणाः ॥१३६॥
सपुत्रदाराः सक्रूराः सुदुर्दर्शाः सुनिर्घृणाः ।
विविधानि च रूपाणि तत्रादृश्यन्त रक्षसाम् ॥१३७॥

उनकी अङ्गुलियाँ पीछेकी ओर थीं । वे रूखे, कुरूप और भयंकर गर्जना करनेवाले थे । बहुतोंने घंटोंकी मालाएँ पहन रक्खी थीं । उनके गलेमें नील चिह्न था । वे बड़े भयानक दिखायी देते थे । उनके स्त्री और पुत्र भी साथ ही थे । वे अत्यन्त क्रूर और निर्दय थे । उनकी ओर देखना भी बहुत कठिन था । वहाँ उन राक्षसोंके भाँति-भाँतिके रूप दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ १३६-१३७ ॥

पीत्वा च शोणितं हृष्टाः प्रानृत्यन् गणशोऽपरे ।
इदं परमिदं मेध्यमिदं स्वाद्विति चाब्रुवन् ॥१३८॥

कोई रक्त पीकर हर्षसे खिल उठे थे । दूसरे अलग-अलग झुंड बनाकर नाच रहे थे । वे आपसमें कहते थे— 'यह उत्तम है, यह पवित्र है और यह बहुत स्वादिष्ट है' ॥

मेदोमज्जास्थिरक्तानां वसानां च भृशाशिताः ।
परमांसानि खादन्तः क्रव्यादा मांसजीविनः ॥१३९॥

मेदा, मज्जा, हड्डी, रक्त और चर्बीका विशेष आहार करनेवाले मांसजीवी राक्षस एवं हिंसक जन्तु दूसरोंके मांस खा रहे थे ॥ १३९ ॥

वसाश्चैवापरे पीत्वा पर्यधावन् विकुक्षिकाः ।
नानावक्त्रास्तथा रौद्राः क्रव्यादाः पिशिताशनाः ॥१४०॥

दूसरे कुक्षिरहित राक्षस चर्बियोंका पान करके चारों ओर दौड़ लगा रहे थे । कच्चा मांस खानेवाले उन भयंकर राक्षसोंके अनेक मुख थे ॥ १४० ॥

अयुतानि च तत्रासन् प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
रक्षसां घोररूपाणां महतां क्रूरकर्मणाम् ॥१४१॥
मुदितानां वितृप्तानां तस्मिन् महति वैशसे ।
समेतानि बहून्यासन् भूतानि च जनाधिप ॥१४२॥

वहाँ उस महान् जनसंहारमें तृप्त और आनन्दित हुए क्रूर कर्म करनेवाले घोर रूपधारी महाकाय राक्षसोंके कई दल थे । किसी दलमें दस हजार, किसीमें एक लाख और किसीमें एक अर्बुद (दस लाख) राक्षस थे । नरेश्वर ! वहाँ और भी बहुत-से मांसभक्षी प्राणी एकत्र हो गये थे ॥

प्रत्यूषकाले शिबिरात् प्रतिगन्तुमियेष सः ।
नृशोणितावसिक्तस्य द्रौणेरासीदसित्सरुः ॥१४३॥
पाणिना सह संश्लिष्ट एकीभूत इव प्रभो ।

प्रातःकाल पौ फटते ही अश्वत्थामाने शिविरसे बाहर निकल जानेका विचार किया । प्रभो ! उस समय नररक्तसे नहाये हुए अश्वत्थामाके हाथसे सटकर उसकी तलवारकी मूँठ ऐसी जान पड़ती थी, मानो वह उससे अभिन्न हो ॥

दुर्गमां पदवीं गत्वा विरराज जनक्षये ॥१४४॥
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ।

जैसे प्रलयकालमें आग सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करके प्रकाशित होती है, उसी प्रकार वह नरसंहार हो जानेपर अपने दुर्गम लक्ष्यतक पहुँचकर अश्वत्थामा अधिक शोभा पाने लगा ॥ १४४½ ॥

यथाप्रतिज्ञं तत् कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो ॥१४५॥
दुर्गमां पदवीं गच्छन् पितुरासीद् गतज्वरः ।

नरेश्वर ! अपने पिताके दुर्गम पथपर चलता हुआ द्रोणकुमार अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सारा कार्य पूर्ण करके शोक और चिन्तासे रहित हो गया ॥ १४५½ ॥

यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि ॥१४६॥

तथैव हत्वा निःशब्दे निश्चक्राम नरर्षभः ।

जिस प्रकार रातके समय सबके सो जानेपर शान्त शिविरमें उसने प्रवेश किया था, उसी प्रकार वह नरश्रेष्ठ वीर सबको मारकर कोलाहलशून्य हुए शिविरसे बाहर निकला ॥

निष्क्रम्य शिबिरात् तस्मात् ताभ्यां संगम्य वीर्यवान् ॥
आचख्यौ कर्म तत् सर्वं हृष्टः संहर्षयन् विभो ।

प्रभो ! उस शिविरसे निकलकर शक्तिशाली अश्वत्थामा उन दोनोंसे मिला और स्वयं हर्षमग्न हो उन दोनोंका हर्ष बढ़ाते हुए उसने अपना किया हुआ सारा कर्म उनसे कह सुनाया ॥ १४७½ ॥

तावथाचख्यतुस्तस्मै प्रियं प्रियकरौ तदा ॥१४८॥
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिकृत्तान् सहस्रशः ।

अश्वत्थामाका प्रिय करनेवाले उन दोनों वीरोंने भी उस समय उससे यह प्रिय समाचार निवेदन किया कि हम दोनोंने भी सहस्रों पाञ्चालों और सृंजयोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं ॥

प्रीत्या चोच्चैरुदक्रोशंस्तथैवास्फोटयंस्तलान् ॥१४९॥
एवंविधा हि सा रात्रिः सोमकानां जनक्षये ।
प्रसुप्तानां प्रमत्तानामासीत् सुभृशदारुणा ॥१५०॥

फिर तो वे तीनों प्रसन्नताके मारे उच्चस्वरसे गर्जने और ताल ठोकने लगे । इस प्रकार वह रात्रि उस जन-संहारकी वेलामें असावधान होकर सोये हुए सोमकोंके लिये अत्यन्त भयंकर सिद्ध हुई ॥ १४९-१५० ॥

असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः ।
तादृशा निहता यत्र कृत्वास्माकं जनक्षयम् ॥१५१॥

राजन् ! इसमें संशय नहीं कि कालकी गतिका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन है । जहाँ हमारे पक्षके लोगोंका संहार करके विजयको प्राप्त हुए वैसे-वैसे वीर मार डाले गये ॥

धृतराष्ट्र उवाच

प्रागेव सुमहत् कर्म द्रौणिरेतन्महारथः ।
नाकरोदीदृशं कस्मान्मत्पुत्रविजये धृतः ॥१५२॥

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! अश्वत्थामा तो मेरे पुत्रको विजय दिलानेका दृढ़ निश्चय कर चुका था । फिर उस महारथी वीरने पहले ही ऐसा महान् पराक्रम क्यों नहीं किया?॥

अथ कस्माद्धते क्षुद्रं कर्मेदं कृतवानसौ ।
द्रोणपुत्रो महात्मा स तन्मे शंसितुमर्हसि ॥१५३॥

जब दुर्योधन मार डाला गया, तब उस महामनस्वी द्रोणपुत्रने ऐसा नीच कर्म क्यों किया ? यह सब मुझे बताओ॥

संजय उवाच

तेषां नूनं भयान्नासौ कृतवान् कुरुनन्दन ।
असांनिध्याद्धि पार्थानां केशवस्य च धीमतः ॥१५४॥
सात्यकेश्चापि कर्मेदं द्रोणपुत्रेण साधितम् ।

संजयने कहा—कुरुनन्दन ! अश्वत्थामाको पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकिसे सदा भय बना रहता था; इसीलिये पहले उसने ऐसा नहीं किया । इस समय कुन्तीके पुत्र, बुद्धिमान् श्रीकृष्ण तथा सात्यकिके दूर चले जानेसे अश्वत्थामाने अपना यह कार्य सिद्ध कर लिया ॥ १५४½ ॥

को हि तेषां समक्षं तान् हन्यादपि मरुत्पतिः ॥१५५॥
एतदीदृशकं वृत्तं राजन् सुप्तजने विभो ।

उन पाण्डव आदिके समक्ष कौन उन्हें मार सकता था? साक्षात् देवराज इन्द्र भी उस दशामें उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे । प्रभो ! नरेश्वर ! उस रात्रिमें सब लोगोंके सो जानेपर यह इस प्रकारकी घटना घटित हुई ॥ १५५½ ॥

ततो जनक्षयं कृत्वा पाण्डवानां महात्ययम् ॥१५६॥
दिष्ट्या दिष्ट्येव चान्योन्यं समेत्योचुर्महारथाः ।

उस समय पाण्डवोंके लिये महान् विनाशकारी जनसंहार करके वे तीनों महारथी जब परस्पर मिले, तब आपसमें कहने लगे—'बड़े सौभाग्यसे यह कार्य सिद्ध हुआ है' ॥

पर्यष्वजत् ततो द्रौणिस्ताभ्यां सम्प्रतिनन्दितः ॥१५७॥
इदं हर्षात् तु सुमहदाददे वाक्यमुत्तमम् ।

तदनन्तर उन दोनोंका अभिनन्दन स्वीकार करके द्रोणपुत्रने उन्हें हृदयसे लगाया और बड़े हर्षसे यह महत्त्वपूर्ण उत्तम वचन मुँहसे निकाला—॥ १५७½ ॥

पञ्चाला निहताः सर्वे द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥१५८॥
सोमका मत्स्यशेषाश्च सर्वे विनिहता मया ।

'सारे पाञ्चाल, द्रौपदीके सभी पुत्र, सोमकवंशी क्षत्रिय तथा मत्स्य देशके अवशिष्ट सैनिक ये सभी मेरे हाथसे मारे गये॥

इदानीं कृतकृत्याः स्म याम तत्रैव मा चिरम् ।
यदि जीवति नो राजा तस्मै शंसमहे वयम् ॥१५९॥

'इस समय हम कृतकृत्य हो गये । अब हमें शीघ्र वहीं चलना चाहिये । यदि हमारे राजा दुर्योधन जीवित हों तो हम उन्हें भी यह समाचार कह सुनावें' ॥ १५९ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि रात्रियुद्धे पाञ्चालादिवधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें पाञ्चाल आदिका वधविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १५९½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

दुर्योधनकी दशा देखकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाका विलाप तथा उनके मुखसे पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त जानकर दुर्योधनका प्रसन्न होकर प्राणत्याग करना

संजय उवाच

ते हत्वा सर्वपञ्चालान् द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
आगच्छन् सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वे तीनों महारथी समस्त पाञ्चालों और द्रौपदीके सभी पुत्रोंका वध करके एक साथ उस स्थानमें आये, जहाँ राजा दुर्योधन मारा गया था ॥१॥

गत्वा चैनमपश्यन्त किञ्चित्प्राणं जनाधिपम् ।
ततो रथेभ्यः प्रस्कन्द्य परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने राजा दुर्योधनको देखा, उसकी कुछ-कुछ साँस चल रही थी । फिर वे रथोंसे कूद पड़े और आपके पुत्रके पास जा उसे सब ओरसे घेरकर बैठ गये ॥

तं भग्नसक्थं राजेन्द्र कृच्छ्रप्राणमचेतसम् ।
वमन्तं रुधिरं वक्त्रादपश्यन् वसुधातले ॥ ३ ॥
वृतं समन्ताद् बहुभिः श्वापदैर्घोरदर्शनैः ।
शालावृकगणैश्चैव भक्षयिष्यद्भिरन्तिकात् ॥ ४ ॥
निवारयन्तं कृच्छ्रात्तांश्वापदांश्च चिखादिषून् ।
विचेष्टमानं मह्यां च सुभृशं गाढवेदनम् ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! उन्होंने देखा कि राजाकी जाँघें टूट गयी हैं । ये बड़े कष्टसे प्राण धारण करते हैं । इनकी चेतना लुप्त-सी हो गयी है और ये अपने मुँहसे पृथ्वीपर खून उगल रहे हैं । इन्हें चट कर जानेके लिये बहुत-से भयंकर दिखायी देनेवाले हिंसक जीव और कुत्ते चारों ओरसे घेरकर आसपास ही खड़े हैं । ये अपनेको खा जानेकी इच्छा रखनेवाले उन हिंसक जन्तुओं-को बड़ी कठिनाईसे रोकते हैं । इन्हें बड़ी भारी पीड़ा हो रही है, जिसके कारण ये पृथ्वीपर पड़े-पड़े छटपटा रहे हैं ॥

तं शयानं तथा दृष्ट्वा भूमौ सुरुधिरोक्षितम् ।
हतशिष्टास्त्रयो वीराः शोकार्ताः पर्यवारयन् ॥ ६ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।

दुर्योधनको इस प्रकार खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए वे तीनों वीर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा शोकसे व्याकुल हो उसे तीन ओरसे घेरकर बैठ गये ॥ ६½ ॥

तैस्त्रिभिः शोणितादिग्धैर्निःश्वसद्भिर्महारथैः ॥ ७ ॥
शुशुभे स वृतो राजा वेदी त्रिभिरिवाग्निभिः ।

वे तीनों महारथी वीर खूनसे रँग गये थे और लंबी साँसें खींच रहे थे । उनसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन तीन अग्नियोंसे घिरी हुई वेदीके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ते तं शयानं सम्प्रेक्ष्य राजानमतथोचितम् ॥ ८ ॥
अविषह्येन दुःखेन ततस्ते रुरुदुस्त्रयः ।

राजाको इस प्रकार अयोग्य अवस्थामें सोया देख वे तीनों असह्य दुःखसे पीड़ित हो रोने लगे ॥ ८½ ॥

ततस्तु रुधिरं हस्तैर्मुखान्निर्मृज्य तस्य हि ।
रणे राज्ञः शयानस्य कृपणं पर्यदेवयन् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् रणभूमिमें सोये हुए राजा दुर्योधनके मुखसे बहते हुए रक्तको हाथोंसे पोंछकर वे तीनों दीन वाणीमें विलाप करने लगे ॥ ९ ॥

कृप उवाच

न दैवस्यातिभारोऽस्ति यदयं रुधिरोक्षितः ।
एकादशचमूभर्ता शेते दुर्योधनो हतः ॥ १० ॥

कृपाचार्य बोले—हाय ! विधाताके लिये कुछ भी करना कठिन नहीं है । जो कभी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी थे, वे ही ये राजा दुर्योधन यहाँ मारे जाकर खूनसे लथपथ हुए पड़े हैं ॥ १० ॥

पश्य चामीकराभस्य चामीकरविभूषिताम् ।
गदां गदाप्रियस्येमां समीपे पतितां भुवि ॥ ११ ॥

देखो, सुवर्णके समान कान्तिवाले इन गदाप्रेमी नरेशके समीप यह सुवर्णभूषित गदा पृथ्वीपर पड़ी है ॥ ११ ॥

इयमेनं गदा शूरं न जहाति रणे रणे ।
स्वर्गायापि व्रजन्तं हि न जहाति यशस्विनम् ॥ १२ ॥

यह गदा इन शूरवीर भूपालका साथ किसी भी युद्धमें नहीं छोड़ती थी और आज स्वर्गलोकमें जाते समय भी यशस्वी नरेशका साथ नहीं छोड़ रही है ॥ १२ ॥

पश्येमां सह वीरेण जाम्बूनदविभूषिताम् ।
शयानां शयने हर्म्ये भार्यां प्रीतिमतीमिव ॥ १३ ॥

देखो, यह सुवर्णभूषित गदा इन वीर भूपालके साथ रणशय्यापर उसी प्रकार सो रही है, जैसे महलमें प्रेम रखने-वाली पत्नी इनके साथ सोया करती थी ॥ १३ ॥

योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे यातः परंतपः ।
स हतो ग्रसते पांसून् पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १४ ॥

जो ये शत्रुसंतापी नरेश सभी मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे चला करते थे, वे ही आज मारे जाकर धरतीपर पड़े-पड़े धूल फाँक रहे हैं । यह समयका उलट-फेर तो देखो ॥

येनाजौ निहता भूमावशेरत पुरा द्विषः ।
स भूमौ निहतः शेते कुरुराजः परैरयम् ॥ १५ ॥

पूर्वकालमें जिनके द्वारा युद्धमें मारे गये शत्रु भूमिपर सोया करते थे, वे ही ये कुरुराज आज शत्रुओंद्वारा स्वयं मारे जाकर भूमिपर शयन करते हैं ॥ १५ ॥

भयान्नमन्ति राजानो यस्य स्म शतसंघशः ।
स वीरशयने शेते क्रव्याद्भिः परिवारितः ॥ १६ ॥

जिनके आगे सैकड़ों राजा भयसे सिर झुकाते थे, वे ही आज हिंसक जन्तुओंसे घिरे हुए वीर-शय्यापर सो रहे हैं ॥

उपासत द्विजाः पूर्वमर्थहेतोर्यमीश्वरम् ।
उपासते च तं ह्यद्य क्रव्यादा मांसहेतवः ॥ १७ ॥

पहले बहुत-से ब्राह्मण धनकी प्राप्तिके लिये जिन नरेशके पास बैठे रहते थे, उन्हींके समीप आज मांसके लिये मांसाहारी जन्तु बैठे हुए हैं ॥ १७ ॥

संजय उवाच

तं शयानं कुरुश्रेष्ठं ततो भरतसत्तम ।
अश्वत्थामा समालोक्य करुणं पर्यदेवयत् ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर कुरुकुल-भूषण दुर्योधनको रणशय्यापर पड़ा देख अश्वत्थामा इस प्रकार करुण विलाप करने लगा—॥ १८ ॥

आहुस्त्वां राजशार्दूल मुख्यं सर्वधनुष्मताम् ।
धनाध्यक्षोपमं युद्धे शिष्यं संकर्षणस्य च ॥ १९ ॥
कथं विवरमद्राक्षीद् भीमसेनस्तवानघ ।
बलिनं कृतिनं नित्यं स च पापात्मवान् नृप ॥ २० ॥

'निष्पाप राजसिंह ! आपको समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कहा जाता था। आप गदायुद्धमें धनाध्यक्ष कुबेरकी समानता करनेवाले तथा साक्षात् संकर्षणके शिष्य थे तो भी भीमसेनने कैसे आपपर प्रहार करनेका अवसर पा लिया ? नरेश्वर ! आप तो सदासे ही बलवान् और गदायुद्धके विद्वान् रहे हैं। फिर उस पापात्माने कैसे आपको मार दिया ? ॥१९-२०॥

कालो नूनं महाराज लोकेऽस्मिन् बलवत्तरः।
पश्यामो निहतं त्वां च भीमसेनेन संयुगे ॥ २१ ॥

'महाराज ! निश्चय ही इस संसारमें समय महाबलवान् है, तभी तो युद्धस्थलमें हम आपको भीमसेनके द्वारा मारा गया देखते हैं॥ २१ ॥

कथं त्वां सर्वधर्मज्ञं क्षुद्रः पापो वृकोदरः।
निकृत्या हतवान् मन्दो नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २२ ॥

'आप तो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता थे। आपको उस मूर्ख, नीच और पापी भीमसेनने किस तरह धोखेसे मार डाला ? अवश्य ही कालका उल्लङ्घन करना सर्वथा कठिन है ॥२२॥

धर्मयुद्धे ह्यधर्मेण समाहूयौजसा मृधे।
गदया भीमसेनेन निर्भग्ने सक्थिनी तव ॥ २३ ॥

'भीमसेनने आपको धर्मयुद्धके लिये बुलाकर रणभूमिमें अधर्मके बलसे गदाद्वारा आपकी दोनों जाँघें तोड़ डालीं ॥

अधर्मेण हतस्याजौ मृद्यमानं पदा शिरः।
य उपेक्षितवान् क्षुद्रं धिक् कृष्णं धिग्युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

'एक तो आप रणभूमिमें अधर्मपूर्वक मारे गये। दूसरे भीमसेनने आपके मस्तकपर लात मारी। इतनेपर भी जिन्होंने उस नीचकी उपेक्षा की, उसे कोई दण्ड नहीं दिया, उन श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरको धिक्कार है !॥ २४ ॥

युद्धेष्वपवदिष्यन्ति योधा नूनं वृकोदरम्।
यावत् स्थास्यन्ति भूतानि निकृत्या ह्यसि पातितः॥२५॥

'आप धोखेसे गिराये गये हैं, अतः इस संसारमें जबतक प्राणियोंकी स्थिति रहेगी, तबतक सभी युद्धोंमें सम्पूर्ण योद्धा भीमसेनकी निन्दा ही करेंगे ॥ २५ ॥

ननु रामोऽब्रवीद् राजंस्त्वां सदा यदुनन्दनः।
दुर्योधनसमो नास्ति गदया इति वीर्यवान् ॥ २६ ॥

'राजन् ! पराक्रमी यदुनन्दन बलरामजी आपके विषयमें सदा कहा करते थे कि 'गदायुद्धकी शिक्षामें दुर्योधनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है' ॥ २६ ॥

श्लाघते त्वां हि वार्ष्णेयो राजसंसत्सु भारत।
स शिष्यो मम कौरव्यो गदायुद्ध इति प्रभो ॥ २७ ॥

'प्रभो ! भरतनन्दन ! वे वृष्णिकुलभूषण बलराम राजाओंकी सभामें सदा आपकी प्रशंसा करते हुए कहते थे कि 'कुरुराज दुर्योधन गदायुद्धमें मेरा शिष्य है' ॥ २७ ॥

यां गतिं क्षत्रियस्याहुः प्रशस्तां परमर्षयः।
हतस्याभिमुखस्याजौ प्राप्तस्त्वमसि तां गतिम्॥ २८ ॥

'महर्षियोंने युद्धमें शत्रुका सामना करते हुए मारे जानेवाले क्षत्रियके लिये जो उत्तम गति बतायी है, आपने वही गति प्राप्त की है ॥ २८ ॥

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं पुरुषर्षभ।
हतपुत्रौ तु शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥ २९ ॥

'पुरुषश्रेष्ठ राजा दुर्योधन ! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता। मुझे तो माता गान्धारी और आपके पिता धृतराष्ट्रके लिये शोक हो रहा है, जिनके सभी पुत्र मार डाले गये हैं ॥

भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम्।
धिगस्तु कृष्णं वार्ष्णेयमर्जुनं चापि दुर्मतिम् ॥ ३० ॥
धर्मज्ञमानिनौ यौ त्वां वध्यमानमुपेक्षताम्।

'अब वे बेचारे शोकमग्न हो भिखारी बनकर इस भूतलपर भीख माँगते फिरेंगे। उस वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण और खोटी बुद्धिवाले अर्जुनको भी धिक्कार है, जिन्होंने अपनेको धर्मज्ञ मानते हुए भी आपके अन्यायपूर्वक वधकी उपेक्षा की ॥

पाण्डवाश्चापि ते सर्वे किं वक्ष्यन्ति नराधिप ॥ ३१ ॥
कथं दुर्योधनोऽस्माभिर्हत इत्यनपत्रपाः।

'नरेश्वर ! क्या वे समस्त पाण्डव भी निर्लज्ज होकर लोगोंके सामने कह सकेंगे कि 'हमने दुर्योधनको किस प्रकार मारा था ?' ॥ ३१½ ॥

धन्यस्त्वमसि गान्धारे यस्त्वमायोधने हतः ॥ ३२ ॥
प्रायशोऽभिमुखः शत्रून् धर्मेण पुरुषर्षभ।

'पुरुषप्रवर गान्धारीनन्दन ! आप धन्य हैं, क्योंकि युद्धमें प्रायः धर्मपूर्वक शत्रुओंका सामना करते हुए मारे गये हैं ॥

हतपुत्रा हि गान्धारी निहतज्ञातिबान्धवा ॥ ३३ ॥
प्रज्ञाचक्षुश्च दुर्धर्षः कां गतिं प्रतिपत्स्यते।

'जिनके सभी पुत्र, कुटुम्बी और भाई-बन्धु मारे जा चुके हैं, वे माता गान्धारी तथा प्रज्ञाचक्षु दुर्जय राजा धृतराष्ट्र अब किस दशाको प्राप्त होंगे ? ॥ ३३½ ॥

धिगस्तु कृतवर्माणं मां कृपं च महारथम् ॥ ३४ ॥
ये वयं न गताः स्वर्गं त्वां पुरस्कृत्य पार्थिवम्।

'मुझको, कृतवर्माको तथा महारथी कृपाचार्यको भी धिक्कार है कि हम आप-जैसे महाराजको आगे करके स्वर्गलोकमें नहीं गये ॥ ३४½ ॥

दातारं सर्वकामानां रक्षितारं प्रजाहितम् ॥ ३५ ॥
यद् वयं नानुगच्छाम त्वां धिगस्मान् नराधमान्।

'आप हमें सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थ देते रहे और प्रजाके हितकी रक्षा करते रहे। फिर भी हमलोग जो आपका अनुसरण नहीं कर रहे हैं, इसके लिये हम-जैसे नराधमोंको धिक्कार है !॥ ३५½ ॥

कृपस्य तव वीर्येण मम चैव पितुश्च मे ॥ ३६ ॥
सभृत्यानां नरव्याघ्र रत्नवन्ति गृहाणि च।

'नरश्रेष्ठ ! आपके ही बल-पराक्रमसे सेवकोंसहित कृपाचार्यको, मुझको तथा मेरे पिताजीको रत्नोंसे भरे हुए भव्य भवन प्राप्त हुए थे ॥ ३६½ ॥

तव प्रसादादस्माभिः समित्रैः सह बान्धवैः ॥ ३७ ॥
अवाप्ताः क्रतवो मुख्या बहवो भूरिदक्षिणाः।

'आपके ही प्रसादसे मित्रों और बन्धु-बान्धवोंसहित हम

लोगोंने प्रचुर दक्षिणाओंसे सम्पन्न अनेक मुख्य-मुख्य यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ॥ ३७½ ॥

कुतश्चापीदृशं पापाः प्रवर्तिष्यामहे वयम् ॥ ३८ ॥
यादृशेन पुरस्कृत्य त्वं गतः सर्वपार्थिवान् ।

'महाराज ! आप जिस भावसे समस्त राजाओंको आगे करके स्वर्ग सिधार रहे हैं, हम पापी ऐसा भाव कहाँसे ला सकेंगे ?॥ ३८½ ॥

वयमेव त्रयो राजन् गच्छन्तं परमां गतिम् ॥ ३९ ॥
यद् वै त्वां नानुगच्छामस्तेन धक्ष्यामहे वयम् ।
तत् स्वर्गहीना हीनार्थाः स्मरन्तः सुकृतस्य ते ॥ ४० ॥

'राजन् ! परम गतिको जाते समय आपके पीछे-पीछे जो हम तीनों भी नहीं चल रहे हैं, इसके कारण हम स्वर्ग और अर्थ दोनोंसे वञ्चित हो आपके सुकृतोंका स्मरण करते हुए दिन-रात शोकाग्निमें जलते रहेंगे ॥ ३९-४० ॥

किं नाम तद् भवेत् कर्म येन त्वां न व्रजाम वै ।
दुःखं नूनं कुरुश्रेष्ठ चरिष्याम महीमिमाम् ॥ ४१ ॥

'कुरुश्रेष्ठ ! न जाने वह कौन-सा कर्म है, जिससे विवश होकर हम आपके साथ नहीं चल रहे हैं। निश्चय ही इस पृथ्वीपर हमें निरन्तर दुःख भोगना पड़ेगा ॥ ४१ ॥

हीनानां नस्त्वया राजन् कुतः शान्तिः कुतः सुखम् ।
गत्वैव तु महाराज समेत्य च महारथान् ॥४२॥
यथाज्येष्ठं यथाश्रेष्ठं पूजयेर्वचनान्मम ।

'महाराज ! आपसे बिछुड़ जानेपर हमें शान्ति और सुख कैसे मिल सकते हैं ? राजन् ! स्वर्गमें जाकर सब महारथियोंसे मिलनेपर आप मेरी ओरसे बड़े-छोटेके क्रमसे उन सबका आदर-सत्कार करें ॥ ४२½ ॥

आचार्यं पूजयित्वा च केतुं सर्वधनुष्मताम् ॥ ४३ ॥
हतं मयाद्य शंसेथा धृष्टद्युम्नं नराधिप ।

'नरेश्वर ! फिर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके ध्वजस्वरूप आचार्यका पूजन करके उनसे कह दें कि 'आज अश्वत्थामाके द्वारा धृष्टद्युम्न मार डाला गया' ॥ ४३½ ॥

परिष्वजेथा राजानं बाह्लिकं सुमहारथम् ॥ ४४ ॥
सैन्धवं सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ।

'महारथी राजा बाह्लिक, सिन्धुराज जयद्रथ, सोमदत्त तथा भूरिश्रवाका भी आप मेरी ओरसे आलिङ्गन करें ॥ ४४½ ॥

तथा पूर्वगतानन्यान् स्वर्गे पार्थिवसत्तमान् ॥ ४५ ॥
अस्मद्वाक्यात् परिष्वज्य सम्पृच्छेस्त्वमनामयम्॥४६॥

'दूसरे-दूसरे भी जो नृपश्रेष्ठ पहलेसे ही स्वर्गलोकमें जा पहुँचे हैं, उन सबको मेरे कथनानुसार हृदयसे लगाकर उनकी कुशल पूछें' ॥ ४५-४६ ॥

संजय उवाच

इत्येवमुक्त्वा राजानं भग्नसक्थमचेतनम् ।
अश्वत्थामा समुद्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जिसकी जाँघें टूट गयी थीं, उस अचेत पड़े हुए राजा दुर्योधनसे ऐसा कहकर अश्वत्थामाने पुनः उसकी ओर देखा और इस प्रकार कहा—॥

दुर्योधन जीवसि त्वं वाक्यं श्रोत्रसुखं शृणु ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो वयम् ॥ ४८ ॥

'राजा दुर्योधन ! यदि आप जीवित हों तो यह कानोंको सुख देनेवाली बात सुनें । पाण्डवपक्षमें केवल सात और कौरवपक्षमें सिर्फ हम तीन ही व्यक्ति बच गये हैं ॥ ४८ ॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः ।
अहं च कृतवर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ४९ ॥

'उधर तो पाँचों भाई पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि बचे हैं और इधर मैं, कृतवर्मा तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य शेष रह गये हैं ॥ ४९ ॥

द्रौपदेया हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
पञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्यशेषं च भारत ॥ ५० ॥

'भरतनन्दन ! द्रौपदी तथा धृष्टद्युम्नके सभी पुत्र मारे गये, समस्त पाञ्चालोंका संहार कर दिया गया और मत्स्य देशकी अवशिष्ट सेना भी समाप्त हो गयी ॥ ५० ॥

कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि पाण्डवाः ।
सौप्तिके शिबिरं तेषां हतं सनरवाहनम् ॥ ५१ ॥

'राजन् ! देखिये, शत्रुओंकी करनीका कैसा बदला चुकाया गया ? पाण्डवोंके भी सारे पुत्र मार डाले गये । रातमें सोते समय मनुष्यों और वाहनोंसहित उनके सारे शिबिरका नाश कर दिया गया ॥ ५१ ॥

मया च पापकर्मासौ धृष्टद्युम्नो महीपते ।
प्रविश्य शिबिरं रात्रौ पशुमारेण मारितः ॥ ५२ ॥

'भूपाल ! मैंने स्वयं रातके समय शिबिरमें घुसकर पापाचारी धृष्टद्युम्नको पशुओंकी तरह गला घोंट-घोंटकर मार डाला है' ॥ ५२ ॥

दुर्योधनस्तु तां वाचं निशम्य मनसः प्रियाम् ।
प्रतिलभ्य पुनश्चेत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

यह मनको प्रिय लगनेवाली बात सुनकर दुर्योधनको पुनः होश आ गया और वह इस प्रकार बोला—॥ ५३ ॥

न मेऽकरोत् तद् गाङ्गेयो न कर्णो न च ते पिता ।
यत् त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतम् ॥ ५४ ॥

'मित्रवर ! आज आचार्य कृप और कृतवर्माके साथ तुमने जो कार्य कर दिखाया है, उसे न गङ्गानन्दन भीष्म, न कर्ण और न तुम्हारे पिताजी ही कर सके थे ॥ ५४ ॥

स च सेनापतिः क्षुद्रो हतः सार्धं शिखण्डिना ।
तेन मन्ये मघवता सममात्मानमद्य वै ॥ ५५ ॥

'शिखण्डीसहित वह नीच सेनापति धृष्टद्युम्न मार डाला गया, इससे आज निश्चय ही मैं अपनेको इन्द्रके समान समझता हूँ ॥ ५५ ॥

स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः संगमः पुनः ।
इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं स कुरुराजो महामनाः ॥ ५६ ॥
प्राणानुपासृजद् वीरः सुहृदां दुःखमुत्सृजन् ।
अपाक्रामद् दिवं पुण्यां शरीरं क्षितिमाविशत् ॥ ५७ ॥

'तुम सब लोगोंका कल्याण हो। तुम्हें सुख प्राप्त हो। अब स्वर्गमें ही हमलोगोंका पुनर्मिलन होगा।' ऐसा कहकर महामनस्वी वीर कुरुराज दुर्योधन चुप हो गया और अपने सुहृदोंके लिये दुःख छोड़कर उसने अपने प्राण त्याग दिये। वह स्वयं तो पुण्यधाम स्वर्गलोकमें चला गया; किंतु उसका पार्थिव शरीर इस पृथ्वीपर ही पड़ा रह गया ॥ ५६-५७ ॥

एवं ते निधनं यातः पुत्रो दुर्योधनो नृप।
अग्रे यात्वा रणे शूरः पश्चाद् विनिहतः परैः ॥ ५८ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन मृत्युको प्राप्त हुआ। वह समराङ्गणमें सबसे पहले गया था और सबसे पीछे शत्रुओंद्वारा मारा गया ॥ ५८ ॥

तथैव ते परिष्वक्ताः परिष्वज्य च ते नृपम्।
पुनः पुनः प्रेक्षमाणाः स्वकानारुरुहू रथान् ॥ ५९ ॥

मरनेसे पहले दुर्योधनने तीनों वीरोंको गले लगाया और उन तीनोंने भी राजाको हृदयसे लगाकर विदा दी, फिर वे बारंबार उसकी ओर देखते हुए अपने-अपने रथोंपर सवार हो गये ॥ ५९ ॥

इत्येवं द्रोणपुत्रस्य निशम्य करुणां गिरम्।
प्रत्यूषकाले शोकार्तः प्राद्रवन्ननगरं प्रति ॥ ६० ॥

इस प्रकार द्रोणपुत्रके मुखसे वह करुणाजनक समाचार सुनकर मैं शोकसे व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल नगरकी ओर दौड़ा चला आया ॥ ६० ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः।
घोरो विशसनो रौद्रो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६१ ॥

राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके अनुसार कौरवों तथा पाण्डवोंकी सेनाओंका यह घोर एवं भयंकर विनाशकार्य सम्पन्न हुआ है ॥ ६१ ॥

तव पुत्रे गते स्वर्गं शोकार्तस्य ममानघ।
ऋषिदत्तं प्रणष्टं तद् दिव्यदर्शित्वमद्य वै ॥ ६२ ॥

निष्पाप नरेश ! आपके पुत्रके स्वर्गलोकमें चले जानेसे मैं शोकसे आतुर हो गया हूँ और महर्षि व्यासजीकी दी हुई मेरी वह दिव्य दृष्टि भी अब नष्ट हो गयी है ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति श्रुत्वा स नृपतिः पुत्रस्य निधनं तदा।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च ततश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र गरम-गरम लंबी साँस खींचकर गहरी चिन्तामें डूब गये ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि दुर्योधनप्राणत्यागे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें दुर्योधनका प्राणत्यागविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

(ऐषीकपर्व)

दशमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे पुत्रों और पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरका विलाप, द्रौपदीको बुलानेके लिये नकुलको भेजना, सुहृदोंके साथ शिविरमें जाना तथा मारे हुए पुत्रादिको देखकर भाईसहित शोकातुर होना

वैशम्पायन उवाच

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः।
शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वह रात व्यतीत होनेपर धृष्टद्युम्नके सारथिने रातको सोते समय जो संहार किया गया था, उसका समाचार धर्मराज युधिष्ठिरसे कह सुनाया ॥ १ ॥

सूत उवाच

द्रौपदेया हता राजन् द्रुपदस्यात्मजैः सह।
प्रमत्ता निशि विश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके ॥ २ ॥

सारथि बोला—राजन् ! द्रुपदके पुत्रोंसहित द्रौपदी देवीके भी सारे पुत्र मारे गये। वे रातको अपने शिविरमें निश्चिन्त एवं असावधान होकर सो रहे थे ॥ २ ॥

कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च।
अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि ॥ ३ ॥

उसी समय क्रूर कृतवर्मा, गौतमवंशी कृपाचार्य तथा पापी अश्वत्थामाने आक्रमण करके आपके सारे शिविरका विनाश कर डाला ॥ ३ ॥

एतैर्नरगजाश्वानां प्रासशक्तिपरश्वधैः।
सहस्राणि निकृन्तद्भिर्निःशेषं ते बलं कृतम् ॥ ४ ॥

इन तीनोंने प्रास, शक्ति और फरसोंद्वारा सहस्रों मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको काट-काटकर आपकी सारी सेनाको समाप्त कर दिया है ॥ ४ ॥

छिद्यमानस्य महतो वनस्येव परश्वधैः।
शुश्रुवे सुमहाञ्शब्दो बलस्य तव भारत ॥ ५ ॥

भारत ! जैसे फरसोंसे विशाल जङ्गल काटा जा रहा हो, उसी प्रकार उनके द्वारा छिन्न-भिन्न की जाती हुई आपकी विशाल वाहिनीका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ता था ॥५॥

अहमेकोऽवशिष्टस्तु तस्मात् सैन्यान्महामते।
मुक्तः कथंचिद् धर्मात्मन् व्यग्राच्च कृतवर्मणः ॥ ६ ॥

महामते ! धर्मात्मन् ! उस विशाल सेनासे अकेला मैं ही किसी प्रकार बचकर निकल आया हूँ। कृतवर्मा दूसरोंको

मारनेमें लगा हुआ था; इसीलिये मैं उस सङ्कटसे मुक्त हो सका हूँ ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वाक्यमशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
पपात मह्यां दुर्धर्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ७ ॥

वह अमङ्गलमय वचन सुनकर दुर्धर्ष राजा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पुत्रशोकसे संतप्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७ ॥

पतन्तं तमतिक्रम्य परिजग्राह सात्यकिः।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ८ ॥

गिरते समय आगे बढ़कर सात्यकिने उन्हें थाम लिया। भीमसेन, अर्जुन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवने भी उन्हें पकड़ लिया ॥ ८ ॥

लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया गिरा।
जित्वा शत्रूञ्जितः पश्चात् पर्यदेवयदार्तवत् ॥ ९ ॥

फिर होशमें आनेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर शोकाकुल वाणीद्वारा आर्तकी भाँति विलाप करने लगे—'हाय ! मैं शत्रुओंको पहले जीतकर पीछे पराजित हो गया ॥ ९ ॥

दुर्विदा गतिरर्थानामपि ये दिव्यचक्षुषः।
जीयमाना जयन्त्यन्ये जयमाना वयं जिताः ॥ १० ॥

'जो लोग दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न हैं, उनके लिये भी पदार्थोंकी गतिको समझना अत्यन्त दुष्कर है। हाय ! दूसरे लोग तो हारकर जीतते हैं; किंतु हमलोग जीतकर हार गये हैं ! ॥१०॥

हत्वा भ्रातॄन् वयस्यांश्च पितॄन् पुत्रान् सुहृद्गणान्।
बन्धूनमात्यान् पौत्रांश्च जित्वा सर्वाञ्जिता वयम्॥ ११ ॥

'हमने भाइयों, समवयस्क मित्रों, पितृतुल्य पुरुषों, पुत्रों, सुहृद्गणों, बन्धुओं, मन्त्रियों तथा पौत्रोंकी हत्या करके उन सबको जीतकर विजय प्राप्त की थी; परंतु अब शत्रुओंद्वारा हम ही पराजित हो गये ॥ ११ ॥

अनर्थो ह्यर्थसंकाशस्तथानर्थोऽर्थदर्शनः।
जयोऽयमजयाकारो जयस्तस्मात् पराजयः ॥ १२ ॥

'कभी-कभी अनर्थ भी अर्थ-सा हो जाता है और अर्थके रूपमें दिखायी देनेवाली वस्तु भी अनर्थके रूपमें परिणत हो जाती है, इसी प्रकार हमारी यह विजय भी पराजयका ही रूप धारण करके आयी थी, इसलिये जय भी पराजय बन गयी॥ १२॥

यज्जित्वा तप्यते पश्चादापन्न इव दुर्मतिः।
कथं मन्येत विजयं ततो जिततरः परैः ॥ १३ ॥

'दुर्बुद्धि मनुष्य यदि विजय-लाभके पश्चात् विपत्तिमें पड़े हुए पुरुषकी भाँति अनुताप करता है तो वह अपनी उस जीतको जीत कैसे मान सकता है ? क्योंकि उस दशामें तो वह शत्रुओंद्वारा पूर्णतः पराजित हो चुका है ॥ १३ ॥

येषामर्थाय पापं स्याद् विजयस्य सुहृद्वधैः।
निर्जितैरप्रमत्तैर्हि विजिता जितकाशिनः ॥ १४ ॥

'जिन्हें विजयके लिये सुहृदोंके वधका पाप करना पड़ता है, वे एक बार विजयलक्ष्मीसे उल्लसित भले ही हो जायँ, अन्तमें पराजित होकर सतत सावधान रहनेवाले शत्रुओंके हाथसे उन्हें पराजित होना ही पड़ता है ॥ १४ ॥

कर्णिनालीकदंष्ट्रस्य खड्गजिह्वस्य संयुगे।
चापव्यात्तस्य रौद्रस्य ज्यातलस्वननादिनः ॥ १५ ॥
क्रुद्धस्य नरसिंहस्य संग्रामेष्वपलायिनः।
ये व्यमुच्यन्त कर्णस्य प्रमादात् त इमे हताः ॥ १६ ॥

'क्रोधमें भरा हुआ कर्ण मनुष्योंमें सिंहके समान था। कर्णि और नालीक नामक बाण उसकी दाढ़ें तथा युद्धमें उठी हुई तलवार उसकी जिह्वा थी। धनुषका खींचना ही उसका मुँह फैलाना था। प्रत्यञ्चाकी टङ्कार ही उसके लिये दहाड़नेके समान थी। युद्धोंमें कभी पीठ न दिखानेवाले उस भयंकर पुरुषसिंहके हाथसे जो जीवित छूट गये, वे ही ये मेरे सगे-सम्बन्धी अपनी असावधानीके कारण मार डाले गये हैं ॥ १५-१६ ॥

रथह्रदं शरवर्षोर्मिमन्तं
रत्नाचितं वाहनवाजियुक्तम्।
शक्त्यृष्टिमीनध्वजनागनक्रं
शरासनावर्तमहेषुफेनम् ॥ १७ ॥
संग्रामचन्द्रोदयवेगवेलं
द्रोणार्णवं ज्यातलनेमिघोषम्।
ये तेरुरुच्चावचशस्त्रनौभि-
स्ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ १८ ॥

'द्रोणाचार्य महासागरके समान थे, रथ ही पानीका कुण्ड था, बाणोंकी वर्षा ही लहरोंके समान ऊपर उठती थी, रत्नमय आभूषण ही उस द्रोणरूपी समुद्रके रत्न थे, रथके घोड़े ही समुद्री घोड़ोंके समान जान पड़ते थे, शक्ति और ऋष्टि मत्स्यके समान तथा ध्वज नाग एवं मगरके तुल्य थे, धनुष ही भँवर तथा बड़े-बड़े बाण ही फेन थे, संग्राम ही चन्द्रोदय बनकर उस समुद्रके वेगको चरम सीमातक पहुँचा देता था, प्रत्यञ्चा और पहियोंकी ध्वनि ही उस महासागरकी गर्जना थी; ऐसे द्रोणरूपी सागरको जो छोटे बड़े नाना प्रकारके शस्त्रोंकी नौका बनाकर पार गये, वे ही राजकुमार असावधानीसे मार डाले गये

न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चिद्
वधो नराणामिह जीवलोके।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात्
त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति ॥ १९ ॥

'प्रमादसे बढ़कर इस संसारमें मनुष्योंके लिये दूसरी कोई मृत्यु नहीं। प्रमादी मनुष्यको सारे अर्थ सब ओरसे त्याग देते हैं और अनर्थ बिना बुलाये ही उसके पास चले आते हैं ॥१९॥

ध्वजोत्तमाग्रोच्छ्रितधूमकेतुं
शरार्चिषं कोपमहासमीरम्।
महाधनुर्ज्यातलनेमिघोषं
तनुत्रनानाविधशस्त्रहोमम् ॥ २० ॥
महाचमूकक्षदवाभिपन्नं
महाहवे भीष्ममयाग्निदाहम्।
ये सेहुरात्तायुधतीक्ष्णवेगं
ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ २१ ॥

'महासमरमें भीष्मरूपी अग्नि जब पाण्डव-सेनाको जला रही थी, उस समय ऊँची ध्वजाओंके शिखरपर फहराती हुई पताका ही धूमके समान जान पड़ती थी, बाणवर्षा ही आगकी लपटें थीं, क्रोध ही प्रचण्ड वायु बनकर उस ज्वालाको बढ़ा रहा था, विशाल धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली और रथके पहियोंका शब्द ही मानो उस अग्निदाहसे उठनेवाली चट-चट ध्वनि था, कवच और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उस आगकी आहुति बन रहे थे, विशाल सेनारूपी सूखे जङ्गलमें दावानलके समान वह आग लगी थी, हाथमें लिये हुए अस्त्र-शस्त्र ही उस अग्निके प्रचण्ड वेग थे, ऐसे अग्निदाहके कष्टको जिन्होंने सह लिया, वे ही राजपुत्र प्रमादवश मारे गये ॥ २०-२१॥

न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं
विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा ।
पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रून्
सर्वान् महेन्द्रं सुखमेधमानम् ॥ २२ ॥

'प्रमादी मनुष्य कभी विद्या, तप, वैभव अथवा महान् यश नहीं प्राप्त कर सकता । देखो, देवराज इन्द्र प्रमाद छोड़ देनेके ही कारण अपने सारे शत्रुओंका संहार करके सुखपूर्वक उन्नति कर रहे हैं ॥ २२ ॥

इन्द्रोपमान् पार्थिवपुत्रपौत्रान्
पश्याविशेषेण हतान् प्रमादात् ।
तीर्त्वा समुद्रं वणिजः समृद्धा
मग्नाः कुनद्यामिव हेलमानाः ॥ २३ ॥

'देखो, प्रमादके ही कारण ये इन्द्रके समान पराक्रमी, राजाओंके पुत्र और पौत्र सामान्य रूपसे मार डाले गये, जैसे समृद्धिशाली व्यापारी समुद्रको पार करके प्रमादवश अवहेलना करनेके कारण छोटी-सी नदीमें डूब गये हों ॥ २३ ॥

अमर्षितैर्ये निहताः शयाना
निःसंशयं ते त्रिदिवं प्रपन्नाः ।
कृष्णां तु शोचामि कथं नु साध्वी
शोकार्णवे साद्य विनङ्क्ष्यतीति ॥ २४ ॥

'शत्रुओंने अमर्षके वशीभूत होकर जिन्हें सोते समय ही मार डाला है वे तो निःसंदेह स्वर्गलोकमें पहुँच गये हैं । मुझे तो उस सती साध्वी कृष्णाके लिये चिन्ता हो रही है जो आज शोकके समुद्रमें डूबकर नष्ट हो जानेकी स्थितिमें पहुँच गयी है ॥ २४ ॥

भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च हतान् निशम्य
पाञ्चालराजं पितरं च वृद्धम् ।
ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां
सा शोष्यते शोककृशाङ्गयष्टिः ॥ २५ ॥

'एक तो पहलेसे ही शोकके कारण क्षीण होकर उसकी देह सूखी लकड़ीके समान हो गयी है ? दूसरे फिर जब वह अपने भाइयों, पुत्रों तथा बूढ़े पिता पाञ्चालराज द्रुपदकी मृत्युका समाचार सुनेगी तब और भी सूख जायगी तथा अवश्य ही अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ेगी ॥ २५ ॥

तच्छोकजं दुःखमपारयन्ती
कथं भविष्यत्युचिता सुखानाम् ।
पुत्रक्षयभ्रातृवधप्रणुन्ना
प्रदह्यमानेन हुताशनेन ॥ २६ ॥

'जो सदा सुख भोगनेके ही योग्य है, वह उस शोकजनित दुःखको न सह सकनेके कारण न जाने कैसी दशाको पहुँच जायगी ? पुत्रों और भाइयोंके विनाशसे व्यथित हो उसके हृदयमें जो शोककी आग जल उठेगी, उससे उसकी बड़ी शोचनीय दशा हो जायगी' ॥ २६ ॥

इत्येवमार्तः परिदेवयन् स
राजा कुरूणां नकुलं बभाषे ।
गच्छानयैनामिह मन्दभाग्यां
समातृपक्षामिति राजपुत्रीम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार आर्तस्वरसे विलाप करते हुए कुरुराज युधिष्ठिरने नकुलसे कहा—'भाई ! जाओ, मन्दभागिनी राजकुमारी द्रौपदीको उसके मातृपक्षकी स्त्रियोंके साथ यहाँ लिया लाओ' ॥

माद्रीसुतस्तत् परिगृह्य वाक्यं
धर्मेण धर्मप्रतिमस्य राज्ञः ।
ययौ रथेनालयमाशु देव्याः
पाञ्चालराजस्य च यत्र दाराः ॥ २८ ॥

माद्रीकुमार नकुलने धर्माचरणके द्वारा साक्षात् धर्मराजकी समानता करनेवाले राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा शिरोधार्य करके रथके द्वारा तुरंत ही महारानी द्रौपदीके उस भवनकी ओर प्रस्थान किया, जहाँ पाञ्चालराजके घरकी भी महिलाएँ रहती थीं ॥ २८ ॥

प्रस्थाप्य माद्रीसुतमाजमीढः
शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः ।
रोरूयमाणः प्रययौ सुताना-
मायोधनं भूतगणानुकीर्णम् ॥ २९ ॥

माद्रीकुमारको वहाँ भेजकर अजमीढकुलनन्दन युधिष्ठिर शोकाकुल हो उन सभी सुहृदोंके साथ बारंबार रोते हुए पुत्रोंके उस युद्धस्थलमें गये, जो भूतगणोंसे भरा हुआ था ॥

स तत् प्रविश्याशिवमुग्ररूपं
ददर्श पुत्रान् सुहृदः सखींश्च ।
भूमौ शयानान् रुधिरार्द्रगात्रान्
विभिन्नदेहान् प्रहृतोत्तमाङ्गान् ॥ ३० ॥

उस भयङ्कर एवं अमङ्गलमय स्थानमें प्रवेश करके उन्होंने अपने पुत्रों, सुहृदों और सखाओंको देखा, जो खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़े थे । उनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये थे और मस्तक कट गये थे ॥३० ॥

स तांस्तु दृष्ट्वा भृशमार्तरूपो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
उच्चैः प्रचुक्रोश च कौरवाग्र्यः
पपात चोर्व्यां सगणो विसंज्ञः ॥ ३१ ॥

उन्हें देखकर कुरुकुलशिरोमणि तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुखी हो गये और उच्चस्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे। धीरे-धीरे उनकी संज्ञा लुप्त हो गयी और वे अपने साथियोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरशिविरप्रवेशे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें युधिष्ठिरका शिविरमें प्रवेशविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

युधिष्ठिरका शोकमें व्याकुल होना, द्रौपदीका विलाप तथा द्रोणकुमारके वधके लिये आग्रह, भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

स दृष्ट्वा निहतान् संख्ये पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा।
महादुःखपरीतात्मा बभूव जनमेजय ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अपने पुत्रों, पौत्रों और मित्रोंको युद्धमें मारा गया देख राजा युधिष्ठिरका हृदय महान् दुःखसे संतप्त हो उठा ॥ १ ॥

ततस्तस्य महाञ्शोकः प्रादुरासीन्महात्मनः।
स्मरतः पुत्रपौत्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य ह ॥ २ ॥

उस समय पुत्रों, पौत्रों, भाइयों और स्वजनोंका स्मरण करके उन महात्माके मनमें महान् शोक प्रकट हुआ ॥ २ ॥

तमश्रुपरिपूर्णाक्षं वेपमानमचेतसम्।
सुहृदो भृशसंविग्नाः सान्त्वयाञ्चक्रिरे तदा ॥ ३ ॥

उनकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं, शरीर काँपने लगा और चेतना लुप्त होने लगी। उनकी ऐसी अवस्था देख उनके सुहृद् अत्यन्त व्याकुल हो उस समय उन्हें सान्त्वना देने लगे ॥ ३ ॥

ततस्तस्मिन् क्षणे कल्पो रथेनादित्यवर्चसा।
नकुलः कृष्णया सार्धमुपायात् परमार्तया ॥ ४ ॥

इसी समय सामर्थ्यशाली नकुल सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा शोकसे अत्यन्त पीड़ित हुई कृष्णाको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ४ ॥

उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियम्।
तदा विनाशं सर्वेषां पुत्राणां व्यथिताभवत् ॥ ५ ॥

उस समय द्रौपदी उपप्लव्य नगरमें गयी हुई थी, वहाँ अपने सारे पुत्रोंके मारे जानेका अत्यन्त अप्रिय समाचार सुनकर वह व्यथित हो उठी थी ॥ ५ ॥

कम्पमानेव कदली वातेनाभिसमीरिता।
कृष्णा राजानमासाद्य शोकार्ता न्यपतद् भुवि ॥ ६ ॥

राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर शोकसे व्याकुल हुई कृष्णा हवासे हिलायी गयी कदलीके समान कम्पित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६ ॥

बभूव वदनं तस्याः सहसा शोककर्षितम्।
फुल्लपद्मपलाशाक्ष्यास्तमोग्रस्त इवांशुमान् ॥ ७ ॥

प्रफुल्ल कमलके समान विशाल एवं मनोहर नेत्रोंवाली द्रौपदीका मुख सहसा शोकसे पीड़ित हो राहुके द्वारा ग्रस्त हुए सूर्यके समान तेजोहीन हो गया ॥ ७ ॥

ततस्तां पतितां दृष्ट्वा संरम्भी सत्यविक्रमः।
बाहुभ्यां परिजग्राह समुत्पत्य वृकोदरः ॥ ८ ॥
सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी।

उसे गिरी हुई देख क्रोधमें भरे हुए सत्यपराक्रमी भीमसेनने उछलकर दोनों बाँहोंसे उसको उठा लिया और उस मानिनी पत्नीको धीरज बँधाया ॥ ८½ ॥

रुदती पाण्डवं कृष्णा सा हि भारतमब्रवीत् ॥ ९ ॥
दिष्ट्या राजन्नवाप्येमामखिलां भोक्ष्यसे महीम्।
आत्मजान् क्षत्रधर्मेण सम्प्रदाय यमाय वै ॥ १० ॥

उस समय रोती हुई कृष्णाने भरतनन्दन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—'राजन् ! सौभाग्यकी बात है कि आप क्षत्रिय-धर्मके अनुसार अपने पुत्रोंको यमराजकी भेंट चढ़ाकर यह सारी पृथ्वी पा गये और अब इसका उपभोग करेंगे ९-१०

दिष्ट्या त्वं कुशली पार्थ मत्तमातङ्गगामिनीम्।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां सौभद्रं न स्मरिष्यसि ॥ ११ ॥

'कुन्तीनन्दन ! सौभाग्यसे ही आपने कुशलपूर्वक रहकर इस मत्त-मातङ्गगामिनी सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त कर लिया, अब तो आपको सुभद्राकुमार अभिमन्युकी भी याद नहीं आयेगी ॥ ११ ॥

आत्मजान् क्षत्रधर्मेण श्रुत्वा शूरान् निपातितान्।
उपप्लव्ये मया सार्धं दिष्ट्या त्वं न स्मरिष्यसि ॥ १२ ॥

'अपने वीर पुत्रोंको क्षत्रिय-धर्मके अनुसार मारा गया सुनकर भी आप उपप्लव्यनगरमें मेरे साथ रहते हुए उन्हें सर्वथा भूल जायँगे; यह भी भाग्यकी ही बात है ॥ १२ ॥

प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा द्रौणिना पापकर्मणा।
शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाश्रयम् ॥ १३ ॥

'पार्थ ! पापाचारी द्रोणपुत्रके द्वारा मेरे सोये हुए पुत्रोंका वध किया गया, यह सुनकर शोक मुझे उसी प्रकार संतप्त कर रहा है, जैसे आग अपने आधारभूत काष्ठको ही जला डालती है ॥ १३ ॥

तस्य पापकृतो द्रौणेर्न चेदद्य त्वया रणे।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम् ॥ १४ ॥
इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः।
न चेत् फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः ॥ १५ ॥

'यदि आज आप रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करके सगे-सम्बन्धियोंसहित पापाचारी द्रोणकुमारके प्राण नहीं हर लेते

हैं तो मैं यहीं अनशन करके अपने जीवनका अन्त कर दूँगी। पाण्डवो! आप सब लोग इस बातको कान खोलकर सुन लें। यदि अश्वत्थामा अपने पापकर्मका फल नहीं पा लेता है तो मैं अवश्य प्राण त्याग दूँगी'॥ १४-१५ ॥

एवमुक्त्वा ततः कृष्णा पाण्डवं प्रत्युपाविशत्।
युधिष्ठिरं याज्ञसेनी धर्मराजं यशस्विनी ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर यशस्विनी द्रुपदकुमारी कृष्णा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सामने ही अनशनके लिये बैठ गयी ॥ १६ ॥

दृष्ट्वोपविष्टां राजर्षिः पाण्डवो महिषीं प्रियाम्।
प्रत्युवाच स धर्मात्मा द्रौपदीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥

अपनी प्रिय महारानी परम सुन्दरी द्रौपदीको उपवासके लिये बैठी देख धर्मात्मा राजर्षि युधिष्ठिरने उससे कहा—॥

धर्म्यं धर्मेण धर्मज्ञे प्राप्तास्ते निधनं शुभे।
पुत्रास्ते भ्रातरश्चैव तान्न शोचितुमर्हसि ॥ १८ ॥

'शुभे! तुम धर्मको जाननेवाली हो। तुम्हारे पुत्रों और भाइयोंने धर्मपूर्वक युद्ध करके धर्मानुकूल मृत्यु प्राप्त की है; अतः तुम्हें उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥

स कल्याणि वनं दुर्गं दूरं द्रौणिरितो गतः।
तस्य त्वं पातनं संख्ये कथं ज्ञास्यसि शोभने ॥ १९ ॥

'कल्याणि! द्रोणकुमार तो यहाँसे भागकर दुर्गम वनमें चला गया है। शोभने! यदि उसे युद्धमें मार गिराया जाय तो भी तुम्हें इसका विश्वास कैसे होगा?' ॥१९॥

द्रौपद्युवाच

द्रोणपुत्रस्य सहजो मणिः शिरसि मे श्रुतः।
निहत्य संख्ये तं पापं पश्येयं मणिमाहृतम् ॥ २० ॥
राजञ्शिरसि ते कृत्वा जीवेयमिति मे मतिः।

द्रौपदी बोली—महाराज! मैंने सुना है कि द्रोणपुत्रके मस्तकमें एक मणि है जो उसके जन्मके साथ ही पैदा हुई है। उस पापीको युद्धमें मारकर यदि वह मणि ला दी जायगी तो मैं उसे देख लूँगी राजन्! उस मणिको आपके सिरपर धारण कराकर ही मैं जीवन धारण कर सकूँगी; ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है २०½

इत्युक्त्वा पाण्डवं कृष्णा राजानं चारुदर्शना ॥ २१ ॥
भीमसेनमथागत्य परमं वाक्यमब्रवीत्।
त्रातुमर्हसि मां भीम क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ २२ ॥

पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर सुन्दरी कृष्णा भीमसेनके पास आयी और यह उत्तम वचन बोली—'प्रिय भीम! आप क्षत्रिय-धर्मका स्मरण करके मेरे जीवनकी रक्षा कर सकते हैं ॥ २१-२२ ॥

जहि तं पापकर्माणं शम्बरं मघवानिव।
न हि ते विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ॥ २३ ॥

'वीर! जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको मारा था, उसी प्रकार आप भी उस पापकर्मी अश्वत्थामाका वध करें। इस संसारमें कोई भी पुरुष पराक्रममें आपकी समानता करनेवाला नहीं है ॥ २३ ॥

श्रुतं तत् सर्वलोकेषु परमव्यसने यथा।
द्वीपोऽभूस्त्वं हि पार्थानां नगरे वारणावते ॥ २४ ॥

'यह बात सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध है कि वारणावतनगरमें जब कुन्तीके पुत्रोंपर भारी सङ्कट पड़ा था, तब आप ही द्वीपके समान उनके रक्षक हुए थे ॥ २४ ॥

हिडिम्बदर्शने चैव तथा त्वमभवो गतिः।
तथा विराटनगरे कीचकेन भृशार्दिताम् ॥ २५ ॥
मामप्युद्धृतवान् कृच्छ्रात् पौलोमीं मघवानिव।

'इसी प्रकार हिडिम्बासुरसे भेंट होनेपर भी आप ही उनके आश्रयदाता हुए। विराटनगरमें जब कीचकने मुझे बहुत तंग कर दिया, तब उस महान् संकटसे आपने मेरा भी उसी तरह उद्धार किया, जैसे इन्द्रने शचीका किया था॥ २५½॥

यथैतान्यकृथाः पार्थ महाकर्माणि वै पुरा ॥ २६ ॥
तथा द्रौणिममित्रघ्न विनिहत्य सुखी भव।

'शत्रुसूदन पार्थ! जैसे पूर्वकालमें ये महान् कर्म आपने किये थे, उसी प्रकार इस द्रोणपुत्रको भी मारकर सुखी हो जाइये'॥ २६½ ॥

तस्या बहुविधं दुःखान्निशम्य परिदेवितम् ॥ २७ ॥
नामर्षयत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः।

दुःखके कारण द्रौपदीका यह भाँति-भाँतिका विलाप सुनकर महाबली कुन्तीकुमार भीमसेन इसे सहन न कर सके॥२७½॥

स काञ्चनविचित्राङ्गमारुरोह महारथम् ॥ २८ ॥
आदाय रुचिरं चित्रं समार्गणगुणं धनुः।
नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे धृतः ॥ २९ ॥
विस्फार्य सशरं चापं तूर्णमश्वानचोदयत्।

वे द्रोणपुत्रके वधका निश्चय करके सुवर्णभूषित विचित्र अङ्गोंवाले रथपर आरूढ़ हुए। उन्होंने बाण और प्रत्यञ्चासहित एक सुन्दर एवं विचित्र धनुष हाथमें लेकर नकुलको सारथि बनाया तथा बाणसहित धनुषको फैलाकर तुरंत ही घोड़ोंको हँकवाया ॥ २८-२९½ ॥

ते हयाः पुरुषव्याघ्र चोदिता वातरंहसः ॥ ३० ॥
वेगेन त्वरिता जग्मुर्हरयः शीघ्रगामिनः।

पुरुषसिंह नरेश! नकुलके द्वारा हाँके गये वे वायुके समान वेगवाले शीघ्रगामी घोड़े बड़ी उतावलीके साथ तीव्र गतिसे चल दिये ॥ ३०½ ॥

शिबिरात् स्वाद् गृहीत्वा स रथस्य पदमच्युतः॥ ३१ ॥
(द्रोणपुत्रगतेनाशु ययौ मार्गेण भारत।)

भरतनन्दन! छावनीसे बाहर निकलकर अपनी टेकसे न टलनेवाले भीमसेन अश्वत्थामाके रथका चिह्न देखते हुए उसी मार्गसे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े, जिससे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा गया था ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि द्रौणिवधार्थं भीमसेनगमने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अश्वत्थामाके वधके लिये भीमसेनका प्रस्थानविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥११॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३१½ श्लोक हैं)

द्वादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अश्वत्थामाकी चपलता एवं क्रूरताके प्रसङ्गमें सुदर्शनचक्र माँगनेकी बात सुनाते हुए उससे भीमसेनकी रक्षाके लिये प्रयत्न करनेका आदेश देना

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे यदूनामृषभस्ततः।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! दुर्धर्ष वीर भीमसेनके चले जानेपर यदुकुलतिलक कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे कहा— ॥ १ ॥

एष पाण्डव ते भ्राता पुत्रशोकपरायणः।
जिघांसुर्द्रौणिमाक्रन्दे एक एवाभिधावति ॥ २ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये आपके भाई भीमसेन पुत्रशोकमें मग्न होकर युद्धमें द्रोणकुमारके वधकी इच्छासे अकेले ही उसपर धावा कर रहे हैं ॥ २ ॥

भीमः प्रियस्ते सर्वेभ्यो भ्रातृभ्यो भरतर्षभ।
तं कृच्छ्रगतमद्य त्वं कस्मान्नाभ्युपपद्यसे ॥ ३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! भीमसेन आपको समस्त भाइयोंसे अधिक प्रिय हैं; किंतु आज वे संकटमें पड़ गये हैं। फिर आप उनकी सहायताके लिये जाते क्यों नहीं हैं ? ॥ ३ ॥

यत् तदाचष्ट पुत्राय द्रोणः परपुरञ्जयः।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेत पृथिवीमपि ॥ ४ ॥

'शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले द्रोणाचार्यने अपने पुत्रको जिस ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका उपदेश दिया है, वह समस्त भूमण्डलको भी दग्ध कर सकता है ॥ ४ ॥

तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम्।
प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनंजयम् ॥ ५ ॥

'सम्पूर्ण धनुर्धरोंके सिरमौर महाभाग महात्मा द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर वह अस्त्र पहले अर्जुनको दिया था ॥ ५ ॥

तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाचदमर्षणः।
ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव ॥ ६ ॥

'अश्वत्थामा इसे सहन न कर सका। वह उनका एकलौता पुत्र था; अतः उसने भी अपने पितासे उसी अस्त्रके लिये प्रार्थना की। तब आचार्यने अपने पुत्रको उस अस्त्रका उपदेश कर दिया; किंतु इससे उनका मन अधिक प्रसन्न नहीं था ॥ ६ ॥

विदितं चापलं ह्यासीदात्मजस्य दुरात्मनः।
सर्वधर्मविदाचार्यः सोऽन्वशात् स्वसुतं ततः ॥ ७ ॥

'उन्हें अपने दुरात्मा पुत्रकी चपलता ज्ञात थी; अतः सब धर्मोंके ज्ञाता आचार्यने अपने पुत्रको इस प्रकार शिक्षा दी ॥ ७ ॥

परमापद्गतेनापि न स्म तात त्वया रणे।
इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु विशेषतः ॥ ८ ॥

''बेटा ! बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी तुम्हें रणभूमिमें विशेषतः मनुष्योंपर इस अस्त्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये' ॥ ८ ॥

इत्युक्तवान् गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान्।
न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥

'नरश्रेष्ठ ! अपने पुत्रसे ऐसा कहकर गुरु द्रोण पुनः उससे बोले—'बेटा ! मुझे संदेह है कि तुम कभी सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थिर नहीं रहोगे' ॥ ९ ॥

स तदाज्ञाय दुष्टात्मा पितुर्वचनमप्रियम्।
निराशः सर्वकल्याणैः शोकात् पर्यचरन्महीम् ॥ १० ॥

'पिताके इस अप्रिय वचनको सुन और समझकर दुष्टात्मा द्रोणपुत्र सब प्रकारके कल्याणकी आशा छोड़ बैठा और बड़े शोकसे पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ १० ॥

ततस्तदा कुरुश्रेष्ठ वनस्थे त्वयि भारत।
अवसद् द्वारकामेत्य वृष्णिभिः परमार्चितः ॥ ११ ॥

'भरतनन्दन ! कुरुश्रेष्ठ ! तदनन्तर जब तुम वनमें रहते थे, उन्हीं दिनों अश्वत्थामा द्वारकामें आकर रहने लगा। वहाँ वृष्णिवंशियोंने उसका बड़ा सत्कार किया ॥ ११ ॥

स कदाचित् समुद्रान्ते वसन् द्वारवतीमनु।
एक एकं समागम्य मामुवाच हसन्निव ॥ १२ ॥

'एक दिन द्वारकामें समुद्रके तटपर रहते समय उसने अकेले ही मुझ अकेलेके पास आकर हँसते हुए-से कहा— ॥

यत् तदुग्रं तपः कृष्ण चरन् सत्यपराक्रमः।
अगस्त्याद् भारताचार्यः प्रत्यपद्यत मे पिता ॥ १३ ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम देवगन्धर्वपूजितम्।
तदद्य मयि दाशार्ह यथा पितरि मे तथा ॥ १४ ॥
अस्मत्तस्तदुपादाय दिव्यमस्त्रं यदूत्तम।
ममाप्यस्त्रं प्रयच्छ त्वं चक्रं रिपुहणं रणे ॥ १५ ॥

''दशार्हनन्दन ! श्रीकृष्ण ! भरतवंशके आचार्य मेरे सत्यपराक्रमी पिताने उग्र तपस्या करके महर्षि अगस्त्यसे जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था, वह देवताओं और गन्धर्वोंद्वारा सम्मानित अस्त्र इस समय जैसा मेरे पिताके पास है, वैसा ही मेरे पास भी है; अतः यदुश्रेष्ठ ! आप मुझसे वह दिव्य अस्त्र लेकर रणभूमिमें शत्रुओंका नाश करनेवाला अपना चक्रनामक अस्त्र मुझे दे दीजिये' ॥ १३–१५ ॥

स राजन् प्रीयमाणेन मयाप्युक्तः कृताञ्जलिः।
याचमानः प्रयत्नेन मत्तोऽस्त्रं भरतर्षभ ॥ १६ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! वह हाथ जोड़कर बड़े प्रयत्नके द्वारा मुझसे अस्त्रकी याचना कर रहा था, तब मैंने भी प्रसन्नतापूर्वक ही उससे कहा— ॥ १६ ॥

देवदानवगन्धर्वमनुष्यपतगोरगाः ।
न समा मम वीर्यस्य शतांशेनापि पिण्डिताः ॥ १७ ॥

''ब्रह्मन् ! देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, पक्षी और नाग—ये सब मिलकर मेरे पराक्रमके सौवें अंशकी भी समानता नहीं कर सकते ॥ १७ ॥

इदं धनुरियं शक्तिरिदं चक्रमियं गदा ।
यद्यदिच्छसि चेदस्त्रं मत्तस्तत् तद् ददामि ते ॥ १८ ॥

''यह मेरा धनुष है, यह शक्ति है, यह चक्र है और यह गदा है । तुम जो-जो अस्त्र मुझसे लेना चाहते हो, वही वह तुम्हें दिये देता हूँ ॥ १८ ॥

यच्छक्नोषि समुद्यन्तुं प्रयोक्तुमपि वा रणे ।
तद् गृहाण विनास्त्रेण यन्मे दातुमभीप्ससि ॥ १९ ॥

''तुम मुझे जो अस्त्र देना चाहते हो, उसे दिये बिना ही रणभूमिमें मेरे जिस आयुधको उठा अथवा चला सको, उसे ही ले लो' ॥ १९ ॥

स सुनाभं सहस्रारं वज्रनाभमयस्मयम् ।
वव्रे चक्रं महाभागो मत्तः स्पर्धन्मया सह ॥ २० ॥

'तब उस महाभागने मेरे साथ स्पर्धा रखते हुए मुझसे मेरा वह लोहमय चक्र माँगा, जिसकी सुन्दर नाभिमें वज्र लगा हुआ है तथा जो एक सहस्र अरोंसे सुशोभित होता है ! ॥

गृहाण चक्रमित्युक्तो मया तु तदनन्तरम् ।
जग्राहोत्पत्य सहसा चक्रं सव्येन पाणिना ॥ २१ ॥

'मैंने भी कह दिया—'ले लो चक्र,' मेरे इतना कहते ही उसने सहसा उछलकर बायें हाथसे चक्रको पकड़ लिया ।२१।

न चैनमशकत् स्थानात् संचालयितुमप्युत ।
अथैनं दक्षिणेनापि गृहीतुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥

'परंतु वह उसे अपनी जगहसे हिला भी न सका। तब उसने उसे दाहिने हाथसे उठानेका प्रयत्न आरम्भ किया ॥

सर्वयत्नबलेनापि गृह्णन्नेवमिदं ततः ।
ततः सर्वबलेनापि यदैनं न शशाक ह ॥ २३ ॥
उद्यन्तुं वा चालयितुं द्रौणिः परमदुर्मनाः ।
कृत्वा यत्नं परिश्रान्तः स न्यवर्तत भारत ॥ २४ ॥

'सारा प्रयत्न और सारी शक्ति लगाकर भी जब उसे पकड़कर उठा अथवा हिला न सका, तब द्रोणकुमार मन-ही-मन बहुत दुखी हो गया । भारत ! यत्न करके थक जानेपर वह उसे लेनेकी चेष्टासे निवृत्त हो गया ॥ २३-२४ ॥

निवृत्तमनसं तस्मादभिप्रायाद् विचेतसम् ।
अहमामन्त्र्य संविग्नमश्वत्थामानमब्रुवम् ॥ २५ ॥

'जब उस संकल्पसे उसका मन हट गया और वह दुःखसे अचेत एवं उद्विग्न हो गया, तब मैंने अश्वत्थामाको बुलाकर पूछा— ॥ २५ ॥

यः सदैव मनुष्येषु प्रमाणं परमं गतः ।
गाण्डीवधन्वा श्वेताश्वः कपिप्रवरकेतनः ॥ २६ ॥
यः साक्षाद् देवदेवेशं शितिकण्ठमुमापतिम् ।
द्वन्द्वयुद्धे पराजिष्णुस्तोषयामास शङ्करम् ॥ २७ ॥
यस्मात् प्रियतरो नास्ति ममान्यः पुरुषो भुवि ।
नादेयं यस्य मे किञ्चिदपि दाराः सुतास्तथा ॥ २८ ॥
तेनापि सुहृदा ब्रह्मन् पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
नोक्तपूर्वमिदं वाक्यं यत् त्वं मामभिभाषसे ॥ २९ ॥

''ब्रह्मन् ! जो मनुष्य समाजमें सदा ही परम प्रामाणिक समझे जाते हैं, जिनके पास गाण्डीव धनुष और श्वेत घोड़े हैं, जिनकी ध्वजापर श्रेष्ठ वानर विराजमान होता है, जिन्होंने द्वन्द्वयुद्धमें साक्षात् देवदेवेश्वर नीलकण्ठ उमावल्लभ भगवान् शङ्करको पराजित करनेका साहस करके उन्हें संतुष्ट किया था, इस भूमण्डलमें मुझे जिनसे बढ़कर परम प्रिय दूसरा कोई मनुष्य नहीं है, जिनके लिये मेरे पास स्त्री, पुत्र आदि कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो देने योग्य न हो, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले मेरे उस प्रिय सुहृद् कुन्तीकुमार अर्जुनने भी पहले कभी ऐसी बात नहीं कही थी, जो आज तुम मुझसे कह रहे हो ॥ २६–२९ ॥

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ॥ ३० ॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत ।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥ ३१ ॥
तेनाप्येतन्महद् दिव्यं चक्रमप्रतिमं रणे ।
न प्रार्थितमभून्मूढ यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३२ ॥

'' मूढ ब्राह्मण ! मैंने बारह वर्षोंतक अत्यन्त घोर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके हिमालयकी घाटीमें रहकर बड़ी भारी तपस्याके द्वारा जिसे प्राप्त किया था, मेरे समान व्रतका पालन करनेवाली रुक्मिणीदेवीके गर्भसे जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूपमें साक्षात् तेजस्वी सनत्कुमारने ही मेरे यहाँ अवतार लिया है, वह प्रद्युम्न मेरा प्रिय पुत्र है । परंतु रणभूमिमें जिसकी कहीं तुलना नहीं है, मेरे इस परम दिव्य चक्रको कभी उस प्रद्युम्नने भी नहीं माँगा था, जिसकी आज तुमने माँग की है ॥ ३०–३२ ॥

रामेणातिबलेनैतन्नोक्तपूर्वं कदाचन ।
न गदेन न साम्बेन यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३३ ॥

''अत्यन्त बलशाली बलरामजीने भी पहले कभी ऐसी बात नहीं कही है । जिसे तुमने माँगा है, उसे गद और साम्बने भी कभी लेनेकी इच्छा नहीं की ॥ ३३ ॥

द्वारकावासिभिश्चान्यैर्वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
नोक्तपूर्वमिदं जातु यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३४ ॥

''द्वारकामें निवास करनेवाले जो अन्य वृष्णि तथा अन्धकवंशके महारथी हैं, उन्होंने भी कभी मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव नहीं किया था, जैसा कि तुमने इस चक्रको माँगते हुए किया है ॥ ३४ ॥

भारताचार्यपुत्रस्त्वं मानितः सर्वयादवैः ।
चक्रेण रथिनां श्रेष्ठ कं नु तात युयुत्ससे ॥ ३५ ॥

''तात ! रथियोंमें श्रेष्ठ ! तुम तो भरतकुलके आचार्यके

पुत्र हो। सम्पूर्ण यादवोंने तुम्हारा बड़ा सम्मान किया है। फिर बताओ तो सही, इस चक्रके द्वारा तुम किसके साथ युद्ध करना चाहते हो ?' ॥ ३५ ॥

एवमुक्तो मया द्रौणिर्मामिदं प्रत्युवाच ह ।
प्रयुज्य भवते पूजां योत्स्ये कृष्ण त्वया सह ॥ ३६ ॥
प्रार्थितं ते मया चक्रं देवदानवपूजितम् ।
अजेयः स्यामिति विभो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

'जब मैंने इस तरह पूछा, तब द्रोणकुमारने मुझे इस प्रकार उत्तर दिया—'श्रीकृष्ण ! मैं आपकी पूजा करके फिर आपके ही साथ युद्ध करूँगा। प्रभो ! मैं यह सच कहता हूँ कि मैंने इस देव-दानवपूजित चक्रको आपसे इसीलिये माँगा था कि इसे पाकर अजेय हो जाऊँ ॥ ३६-३७ ॥

त्वत्तोऽहं दुर्लभं काममनवाप्यैव केशव ।
प्रतियास्यामि गोविन्द शिवेनाभिवदस्व माम् ॥ ३८ ॥

''किंतु केशव ! अब मैं अपनी इस दुर्लभ कामनाको आपसे प्राप्त किये बिना ही लौट जाऊँगा। गोविन्द ! आप मुझसे केवल इतना कह दें कि 'तेरा कल्याण हो' ॥ ३८ ॥

एतत् सुभीमं भीमानामृषभेण त्वया धृतम् ।
चक्रमप्रतिचक्रेण भुवि नान्योऽभिपद्यते ॥ ३९ ॥

''यह चक्र अत्यन्त भयंकर है और आप भी भयानक वीरोंके शिरोमणि हैं। आपके किसी विरोधीके पास ऐसा चक्र नहीं है। आपने ही इसे धारण कर रक्खा है। इस भूतलपर दूसरा कोई पुरुष इसे नहीं उठा सकता' ॥ ३९ ॥

एतावदुक्त्वा द्रौणिर्मां युग्यानश्वान् धनानि च ।
आदायोपययौ काले रत्नानि विविधानि च ॥ ४० ॥

'मुझसे इतना ही कहकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा रथमें जोतने योग्य घोड़े, धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर वहाँसे यथासमय लौट गया ॥ ४० ॥

स संरम्भी दुरात्मा च चपलः क्रूर एव च ।
वेद चास्त्रं ब्रह्मशिरस्तस्माद् रक्ष्यो वृकोदरः ॥ ४१ ॥

'वह क्रोधी, दुष्टात्मा, चपल और क्रूर है। साथ ही उसे ब्रह्मास्त्रका भी ज्ञान है; अतः उससे भीमसेनकी रक्षा करनी चाहिये' ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरकृष्णसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें युधिष्ठिर और श्रीकृष्णका संवादविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिरका भीमसेनके पीछे जाना, भीमका गङ्गातटपर पहुँचकर अश्वत्थामाको ललकारना और अश्वत्थामाके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा युधां श्रेष्ठः सर्वयादवनन्दनः ।
सर्वायुधवरोपेतमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सम्पूर्ण यादवकुलको आनन्दित करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कहकर समस्त श्रेष्ठ आयुधोंसे सम्पन्न उत्तम रथपर आरूढ़ हुए ॥ १ ॥

युक्तं परमकाम्बोजैस्तुरगैर्हेममालिभिः ।
आदित्योदयवर्णस्य धुरं रथवरस्य तु ॥ २ ॥
दक्षिणामवहच्छैब्यः सुग्रीवः सव्यतोऽभवत् ।
पार्ष्णिवाहौ तु तस्यास्तां मेघपुष्पबलाहकौ ॥ ३ ॥

उसमें सोनेकी माला पहने हुए अच्छी जातिके काबुली घोड़े जुते हुए थे। उस श्रेष्ठ रथकी कान्ति उदयकालीन सूर्यके समान अरुण थी। उसकी दाहिनी धुराका बोझ शैब्य ढो रहा था और बायींका सुग्रीव। उन दोनोंके पार्श्वभागमें क्रमशः मेघपुष्प और बलाहक जुते हुए थे ॥ २-३ ॥

विश्वकर्मकृता दिव्या रत्नधातुविभूषिता ।
उच्छ्रितेव रथे माया ध्वजयष्टिरदृश्यत ॥ ४ ॥

उस रथपर विश्वकर्माद्वारा निर्मित तथा रत्नमय धातुओंसे विभूषित दिव्य ध्वजा दिखायी दे रही थी, जो ऊँचे उठी हुई मायाके समान प्रतीत होती थी ॥ ४ ॥

वैनतेयः स्थितस्तस्यां प्रभामण्डलरश्मिवान् ।
तस्य सत्यवतः केतुर्भुजगारिरदृश्यत ॥ ५ ॥

उस ध्वजापर प्रभापुञ्ज एवं किरणोंसे सुशोभित विनतानन्दन गरुड़ विराज रहे थे। सर्पोंके शत्रु गरुड़ सत्यवान् श्रीकृष्णके रथकी पताकाके रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥५॥

अथारोहद्धृषीकेशः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।
अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण पहले उस रथपर सवार हुए। तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी अर्जुन तथा कुरुराज युधिष्ठिर उस रथपर बैठे ॥ ६ ॥

अशोभेतां महात्मानौ दाशार्हमभितः स्थितौ ।
रथस्थं शार्ङ्गधन्वानमश्विनाविव वासवम् ॥ ७ ॥

वे दोनों महात्मा पाण्डव रथपर स्थित हुए शार्ङ्ग धनुषधारी दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णके समीप विराजमान हो इन्द्रके पास बैठे हुए दोनों अश्विनीकुमारोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥

तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितम् ।
प्रतोदेन जवोपेतान् परमाश्वानचोदयत् ॥ ८ ॥

उन दोनों भाइयोंको उस लोकपूजित रथपर चढ़ाकर दशार्हवंशी श्रीकृष्णने वेगशाली उत्तम अश्वोंको चाबुकसे हाँका।

ते हयाः सहसोत्पेतुर्गृहीत्वा स्यन्दनोत्तमम् ।
आस्थितं पाण्डवेयाभ्यां यदूनामृषभेण च ॥ ९ ॥

वे घोड़े दोनों पाण्डवों तथा यदुकुलतिलक श्रीकृष्णकी सवारीमें आये हुए उस उत्तम रथको लेकर सहसा उड़ चले ॥

वहतां शार्ङ्गधन्वानमश्वानां शीघ्रगामिनाम् ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः पक्षिणां पततामिव ॥ १० ॥

शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णकी सवारी ढोते हुए उन शीघ्रगामी अश्वोंका महान् शब्द उड़ते हुए पक्षियोंके समान प्रकट हो रहा था ॥ १० ॥

ते समार्च्छन्नरव्याघ्राः क्षणेन भरतर्षभ ।
भीमसेनं महेष्वासं समनुद्रुत्य वेगिताः ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे तीनों नरश्रेष्ठ बड़े वेगसे पीछे-पीछे दौड़कर क्षणभरमें महाधनुर्धर भीमसेनके पास जा पहुँचे ॥ ११ ॥

क्रोधदीप्तं तु कौन्तेयं द्विषदर्थे समुद्यतम् ।
नाशक्नुवन् वारयितुं समेत्यापि महारथाः ॥ १२ ॥

इस समय कुन्तीकुमार भीमसेन क्रोधसे प्रज्वलित हो शत्रुका संहार करनेके लिये तुले हुए थे । इसलिये वे तीनों महारथी उनसे मिलकर भी उन्हें रोक न सके ॥ १२ ॥

स तेषां प्रेक्षतामेव श्रीमतां दृढधन्विनाम् ।
ययौ भागीरथीतीरं हरिभिर्भृशवेगितैः ॥ १३ ॥
यत्र स श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनाम् ।

उन सुदृढ़ धनुर्धर तेजस्वी वीरोंके देखते-देखते वे अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंके द्वारा भागीरथीके तटपर जा पहुँचे, जहाँ उन महात्मा पाण्डवोंके पुत्रोंका वध करनेवाला अश्वत्थामा बैठा सुना गया था ॥ १३½ ॥

स ददर्श महात्मानमुदकान्ते यशस्विनम् ॥ १४ ॥
कृष्णद्वैपायनं व्यासमासीनमृषिभिः सह ।
तं चैव क्रूरकर्माणं घृताक्तं कुशचीरिणम् ॥ १५ ॥
रजसा ध्वस्तमासीनं ददर्श द्रौणिमन्तिके ।

वहाँ जाकर उन्होंने गङ्गाजीके जलके किनारे परम यशस्वी महात्मा श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासको अनेकों महर्षियोंके साथ बैठे देखा । उनके पास ही वह क्रूरकर्मा द्रोणपुत्र भी बैठा दिखायी दिया । उसने अपने शरीरमें घी लगाकर कुशका चीर पहन रक्खा था । उसके सारे अङ्गोंपर धूल छा रही थी ॥ १४-१५½ ॥

तमभ्यधावत् कौन्तेयः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ १६ ॥
भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

कुन्तीकुमार महाबाहु भीमसेन बाणसहित धनुष लिये उसकी ओर दौड़े और बोले—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

स दृष्ट्वा भीमधन्वानं प्रगृहीतशरासनम् ॥ १७ ॥
भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दनरथे स्थितौ ।
व्यथितात्माभवद् द्रौणिः प्राप्तं चेदममन्यत ॥ १८ ॥

अश्वत्थामाने देखा कि भयंकर धनुर्धर भीमसेन हाथमें धनुष लिये आ रहे हैं । उनके पीछे श्रीकृष्णके रथपर बैठे हुए दो भाई और हैं । यह सब देखकर द्रोणकुमारके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई । उस घबराहटमें उसने यही करना उचित समझा ॥ १७-१८ ॥

स तद् दिव्यमदीनात्मा परमास्त्रमचिन्तयत् ।
जग्राह च स चैषीकां द्रौणिः सव्येन पाणिना ॥ १९ ॥

उदारहृदय अश्वत्थामाने उस दिव्य एवं उत्तम अस्त्रका चिन्तन किया । साथ ही बायें हाथसे एक सींक उठा ली ॥

स तामापदमासाद्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।
अमृष्यमाणस्ताञ्छूरान् दिव्यायुधधरान् स्थितान् ॥ २० ॥
अपाण्डवायेति रुषा व्यसृजद् दारुणं वचः ।

दिव्य आयुध धारण करके खड़े हुए उन शूरवीरोंका आना वह सहन न कर सका । उस आपत्तिमें पड़कर उसने रोषपूर्वक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया और मुखसे कठोर वचन निकाला कि 'यह अस्त्र समस्त पाण्डवोंका विनाश कर डाले' ॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूल द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २१ ॥
सर्वलोकप्रमोहार्थं तदस्त्रं प्रमुमोच ह ।

नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर प्रतापी द्रोणपुत्रने सम्पूर्ण लोकोंको मोहमें डालनेके लिये वह अस्त्र छोड़ दिया ॥ २१½ ॥

ततस्तस्यामिषीकायां पावकः समजायत ।
प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन् कालान्तकयमोपमः ॥ २२ ॥

तदनन्तर उस सींकमें काल, अन्तक और यमराजके समान भयंकर आग प्रकट हो गयी । उस समय ऐसा जान पड़ा कि वह अग्नि तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर डालेगी ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि ब्रह्मशिरोऽस्त्रत्यागे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अश्वत्थामाके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोगविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके अस्त्रका निवारण करनेके लिये अर्जुनके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग एवं वेदव्यासजी और देवर्षि नारदका प्रकट होना

वैशम्पायन उवाच

इङ्गितेनैव दाशार्हस्तमभिप्रायमादितः ।
द्रौणेर्बुद्ध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! दशार्हनन्दन महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण अश्वत्थामाकी चेष्टासे ही उसके मनका भाव पहले ही ताड़ गये थे । उन्होंने अर्जुनसे कहा—॥

अर्जुनार्जुन यद्दिव्यमस्त्रं ते हृदि वर्तते।
द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः सम्प्रति पाण्डव ॥ २ ॥

'अर्जुन ! अर्जुन ! पाण्डुनन्दन ! आचार्य द्रोणका उपदेश किया हुआ जो दिव्य अस्त्र तुम्हारे हृदयमें विद्यमान है, उसके प्रयोगका अब यह समय आ गया है ॥ २ ॥

भ्रातॄणामात्मनश्चैव परित्राणाय भारत।
विसृजैतत् त्वमप्याजावस्त्रमस्त्रनिवारणम् ॥ ३ ॥

'भरतनन्दन ! भाइयोंकी और अपनी रक्षाके लिये तुम भी युद्धमें इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करो। अश्वत्थामाके अस्त्रका निवारण इसीके द्वारा हो सकता है' ॥ ३ ॥

केशवेनैवमुक्तोऽथ पाण्डवः परवीरहा।
अवातरद् रथात् तूर्णं प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन धनुष-बाण हाथमें लेकर तुरंत ही रथसे नीचे उतर गये ॥ ४ ॥

पूर्वमाचार्यपुत्राय ततोऽनन्तरमात्मने।
भ्रातृभ्यश्चैव सर्वेभ्यः स्वस्तीत्युक्त्वा परंतपः ॥ ५ ॥
देवताभ्यो नमस्कृत्य गुरुभ्यश्चैव सर्वशः।
उत्ससर्ज शिवं ध्यायन्नस्त्रमस्त्रेण शाम्यताम् ॥ ६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने सबसे पहले यह कहा कि 'आचार्यपुत्रका कल्याण हो'। तत्पश्चात् अपने और सम्पूर्ण भाइयोंके लिये मङ्गल-कामना करके उन्होंने देवताओं और सभी गुरुजनोंको नमस्कार किया। इसके बाद 'इस ब्रह्मास्त्रसे शत्रुका ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय' ऐसा संकल्प करके सबके कल्याणकी भावना करते हुए अपना दिव्य अस्त्र छोड़ दिया ॥ ५-६ ॥

ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीवधन्वना।
प्रजज्वाल महार्चिष्मद् युगान्तानलसंनिभम् ॥ ७ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा छोड़ा गया वह ब्रह्मास्त्र सहसा प्रज्वलित हो उठा। उससे प्रलयाग्निके समान बड़ी-बड़ी लपटें उठने लगीं ॥ ७ ॥

तथैव द्रोणपुत्रस्य तदस्त्रं तिग्मतेजसः।
प्रजज्वाल महाज्वालं तेजोमण्डलसंवृतम् ॥ ८ ॥

इसी प्रकार प्रचण्ड तेजस्वी द्रोणपुत्रका वह अस्त्र भी तेजोमण्डलसे घिरकर बड़ी-बड़ी ज्वालाओंके साथ जलने लगा॥

निर्घाता बहवश्चासन् पेतुरुल्काः सहस्रशः।
महद् भयं च भूतानां सर्वेषां समजायत ॥ ९ ॥

उस समय बारंबार वज्रपातके समान शब्द होने लगे, आकाशसे सहस्रों उल्काएँ टूट-टूटकर गिरने लगीं और समस्त प्राणियोंपर महान् भय छा गया ॥ ९ ॥

सशब्दमभवद् व्योम ज्वालामालाकुलं भृशम्।
चचाल च मही कृत्स्ना सपर्वतवनद्रुमा ॥ १० ॥

सारा आकाश आगकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याप्त हो उठा और वहाँ जोर-जोरसे शब्द होने लगा। पर्वत, वन और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी हिलने लगी ॥ १० ॥

ते त्वस्त्रतेजसी लोकांस्तापयन्ती व्यवस्थिते।
महर्षी सहितौ तत्र दर्शयामासतुस्तदा ॥ ११ ॥
नारदः सर्वभूतात्मा भरतानां पितामहः।

उन दोनों अस्त्रोंके तेज समस्त लोकोंको संतप्त करते हुए वहाँ स्थित हो गये। उस समय वहाँ सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा नारद तथा भरतवंशके पितामह व्यास इन दो महर्षियोंने एक साथ दर्शन दिया ॥ ११½ ॥

उभौ शमयितुं वीरौ भारद्वाजधनंजयौ ॥ १२ ॥
तौ मुनी सर्वधर्मज्ञौ सर्वभूतहितैषिणौ।
दीप्तयोरस्त्रयोर्मध्ये स्थितौ परमतेजसौ ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा समस्त प्राणियोंके हितैषी वे दोनों परम तेजस्वी मुनि अश्वत्थामा और अर्जुन—इन दोनों वीरोंको शान्त करनेके लिये इनके प्रज्वलित अस्त्रोंके बीचमें खड़े हो गये ॥ १२-१३ ॥

तदन्तरमथाधृष्यावुपगम्य यशस्विनौ।
आस्तामृषिवरौ तत्र ज्वलिताविव पावकौ ॥ १४ ॥

उन अस्त्रोंके बीचमें आकर वे दुर्धर्ष एवं यशस्वी महर्षि-प्रवर दो प्रज्वलित अग्नियोंके समान वहाँ स्थित हो गये ॥

प्राणभृद्भिरनाधृष्यौ देवदानवसम्मतौ।
अस्त्रतेजः शमयितुं लोकानां हितकाम्यया ॥ १५ ॥

कोई भी प्राणी उन दोनोंका तिरस्कार नहीं कर सकता था। देवता और दानव दोनों ही उनका सम्मान करते थे। वे समस्त लोकोंके हितकी कामनासे उन अस्त्रोंके तेजको शान्त करानेके लिये वहाँ आये थे ॥ १५ ॥

ऋषी ऊचतुः

नानाशस्त्रविदः पूर्वे येऽप्यतीता महारथाः।
नैतदस्त्रं मनुष्येषु तैः प्रयुक्तं कथंचन।
किमिदं साहसं वीरौ कृतवन्तौ महात्ययम् ॥ १६ ॥

उन दोनों ऋषियोंने उन दोनों वीरोंसे कहा—'वीरो ! पूर्वकालमें भी जो बहुत-से महारथी हो चुके हैं, वे नाना प्रकारके शस्त्रोंके जानकार थे, परंतु उन्होंने किसी प्रकार भी मनुष्योंपर इस अस्त्रका प्रयोग नहीं किया था। तुम दोनोंने यह महान् विनाशकारी दुःसाहस क्यों किया है ?' ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि अर्जुनास्त्रत्यागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अर्जुनके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोगविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥



अश्वत्थामा एवं अर्जुनके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रोंको शान्त करनेके लिये नारदजी और व्यासजीका आगमन

पञ्चदशोऽध्यायः

वेदव्यासजीकी आज्ञासे अर्जुनके द्वारा अपने अस्त्रका उपसंहार तथा अश्वत्थामाका अपनी मणि देकर पाण्डवोंके गर्भोंपर दिव्यास्त्र छोड़ना

वैशम्पायन उवाच

दृष्ट्वैव नरशार्दूल तावग्निसमतेजसौ।
गाण्डीवधन्वा संचिन्त्य प्राप्तकालं महारथः।
संजहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनंजयः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरश्रेष्ठ! उन अग्निके समान तेजस्वी दोनों महर्षियोंको देखते ही गाण्डीवधारी महारथी अर्जुनने समयोचित कर्त्तव्यका विचार करके बड़ी फुर्तीसे अपने दिव्यास्त्रका उपसंहार आरम्भ किया॥ १॥

उवाच भरतश्रेष्ठ तावृषी प्राञ्जलिस्तदा।
प्रमुक्तमस्त्रमस्त्रेण शाम्यतामिति वै मया॥ २॥
संहृते परमास्त्रेऽस्मिन् सर्वानस्मानशेषतः।
पापकर्मा ध्रुवं द्रौणिः प्रधक्ष्यत्यस्त्रतेजसा॥ ३॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय उन्होंने हाथ जोड़कर उन दोनों महर्षियोंसे कहा—'मुनिवरो! मैंने तो इसी उद्देश्यसे यह अस्त्र छोड़ा था कि इसके द्वारा शत्रुका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय। अब इस उत्तम अस्त्रको लौटा लेनेपर पापाचारी अश्वत्थामा अपने अस्त्रके तेजसे अवश्य ही हम सब लोगोंको भस्म कर डालेगा॥ २-३॥

यदत्र हितमस्माकं लोकानां चैव सर्वथा।
भवन्तौ देवसंकाशौ तथा सम्मन्तुमर्हतः॥ ४॥

'आप दोनों देवताके तुल्य हैं; अतः इस समय जैसा करनेसे हमारा और सब लोगोंका सर्वथा हित हो, उसीके लिये आप हमें सलाह दें'॥ ४॥

इत्युक्त्वा संजहारास्त्रं पुनरेवं धनंजयः।
संहारो दुष्करस्तस्य देवैरपि हि संयुगे॥ ५॥
विसृष्टस्य रणे तस्य परमास्त्रस्य संग्रहे।
अशक्तः पाण्डवादन्यः साक्षादपि शतक्रतुः॥ ६॥

ऐसा कहकर अर्जुनने पुनः उस अस्त्रको पीछे लौटा लिया। युद्धमें उसे लौटा लेना देवताओंके लिये भी दुष्कर था। संग्राममें एक बार उस दिव्य अस्त्रको छोड़ देनेपर पुनः उसे लौटा लेनेमें पाण्डुपुत्र अर्जुनके सिवा साक्षात् इन्द्र भी समर्थ नहीं थे॥ ५-६॥

ब्रह्मतेजोद्भवं तद्धि विसृष्टमकृतात्मना।
न शक्यमावर्तयितुं ब्रह्मचारिव्रतादृते॥ ७॥

वह अस्त्र ब्रह्मतेजसे प्रकट हुआ था। यदि अजितेन्द्रिय पुरुषके द्वारा इसका प्रयोग किया गया हो तो उसके लिये इसे पुनः लौटाना असम्भव है; क्योंकि ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किये बिना कोई इसे लौटा नहीं सकता॥ ७॥

अचीर्णब्रह्मचर्यो यः सृष्ट्वा वर्तयते पुनः।
तदस्त्रं सानुबन्धस्य मूर्धानं तस्य कृन्तति॥ ८॥

जिसने ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया हो, वह पुरुष यदि उसका एक बार प्रयोग करके उसे फिर लौटानेका प्रयत्न करे तो वह अस्त्र सगे-सम्बन्धियोंसहित उसका सिर काट लेता था॥ ८॥

ब्रह्मचारी व्रती चापि दुरवापमवाप्य तत्।
परमव्यसनार्तोऽपि नार्जुनोऽस्त्रं व्यमुञ्चत॥ ९॥

अर्जुनने ब्रह्मचारी तथा व्रतधारी रहकर ही उस दुर्लभ अस्त्रको प्राप्त किया था। वे बड़े-से-बड़े सङ्कटमें पड़नेपर भी कभी उस अस्त्रका प्रयोग नहीं करते थे॥ ९॥

सत्यव्रतधरः शूरो ब्रह्मचारी च पाण्डवः।
गुरुवर्ती च तेनास्त्रं संजहारार्जुनः पुनः॥ १०॥

सत्यव्रतधारी, ब्रह्मचारी, शूरवीर पाण्डव अर्जुन गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाले थे; इसलिये उन्होंने फिर उस अस्त्रको लौटा लिया॥ १०॥

द्रौणिरप्यथ सम्प्रेक्ष्य तावृषी पुरतः स्थितौ।
न शशाक पुनर्घोरमस्त्रं संहर्तुमोजसा॥ ११॥

अश्वत्थामाने भी जब उन ऋषियोंको अपने सामने खड़ा देखा तो उस घोर अस्त्रको बलपूर्वक लौटा लेनेका प्रयत्न किया, किंतु वह उसमें सफल न हो सका॥ ११॥

अशक्तः प्रतिसंहारे परमास्त्रस्य संयुगे।
द्रौणिर्दीनमना राजन् द्वैपायनमभाषत॥ १२॥

राजन्! युद्धमें उस दिव्य अस्त्रका उपसंहार करनेमें समर्थ न होनेके कारण द्रोणकुमार मन-ही-मन बहुत दुखी हुआ और व्यासजीसे इस प्रकार बोला—॥ १२॥

उत्तमव्यसनार्तेन प्राणत्राणमभीप्सुना।
मयैतदस्त्रमुत्सृष्टं भीमसेनभयान्मुने॥ १३॥

'मुने! मैंने भीमसेनके भयसे भारी संकटमें पड़कर अपने प्राणोंको बचानेके लिये ही यह अस्त्र छोड़ा था॥ १३॥

अधर्मश्च कृतोऽनेन धार्तराष्ट्रं जिघांसता।
मिथ्याचारेण भगवन् भीमसेनेन संयुगे॥ १४॥

'भगवन्! दुर्योधनके वधकी इच्छासे इस भीमसेनने संग्रामभूमिमें मिथ्याचारका आश्रय लेकर महान् अधर्म किया था॥ १४॥

अतः सृष्टमिदं ब्रह्मन् मयास्त्रमकृतात्मना।
तस्य भूयोऽद्य संहारं कर्तुं नाहमिहोत्सहे॥ १५॥

'ब्रह्मन्! यद्यपि मैं जितेन्द्रिय नहीं हूँ, तथापि मैंने इस अस्त्रका प्रयोग कर दिया है। अब पुनः इसे लौटा लेनेकी शक्ति मुझमें नहीं है॥ १५॥

विसृष्टं हि मया दिव्यमेतदस्त्रं दुरासदम्।
अपाण्डवायेति मुने वह्नितेजोऽनुमन्त्र्य वै॥ १६॥

'मुने ! मैंने इस दुर्जय दिव्यास्त्रको अग्निके तेजसे युक्त एवं अभिमन्त्रित करके इस उद्देश्यसे छोड़ा था कि पाण्डवों-का नामो-निशान मिट जाय ॥ १६ ॥

तदिदं पाण्डवेयानामन्तकायाभिसंहितम् ।
अद्य पाण्डुसुतान् सर्वान् जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥ १७ ॥

'पाण्डवोंके विनाशका संकल्प लेकर छोड़ा गया यह दिव्यास्त्र आज समस्त पाण्डुपुत्रोंको जीवनशून्य कर देगा ॥

कृतं पापमिदं ब्रह्मन् रोषाविष्टेन चेतसा ।
वधमाशास्य पार्थानां मयास्त्रं सृजता रणे ॥ १८ ॥

'ब्रह्मन् ! मैंने मनमें रोष भरकर रणभूमिमें कुन्तीपुत्रोंके वधकी इच्छासे इस अस्त्रका प्रयोग करके अवश्य ही बड़ा भारी पाप किया है' ॥ १८ ॥

व्यास उवाच

अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तात विद्वान् पार्थो धनंजयः ।
उत्सृष्टवान्न रोषेण न नाशाय तवाहवे ॥ १९ ॥

व्यासजीने कहा—तात ! कुन्तीपुत्र धनंजय भी तो इस ब्रह्मास्त्रके ज्ञाता हैं; किंतु उन्होंने रोषमें भरकर युद्धमें तुम्हें मारनेके लिये उसे नहीं छोड़ा है ॥ १९ ॥

अस्त्रमस्त्रेण तु रणे तव संशमयिष्यता ।
विसृष्टमर्जुनेनेदं पुनश्च प्रतिसंहृतम् ॥ २० ॥

देखो, रणभूमिमें अपने अस्त्रद्वारा तुम्हारे अस्त्रको शान्त करनेके उद्देश्यसे ही अर्जुनने उसका प्रयोग किया था और अब पुनः उसे लौटा लिया है ॥ २० ॥

ब्रह्मास्त्रमप्यवाप्यैतदुपदेशात् पितुस्तव ।
क्षत्रधर्मान्महाबाहुर्नाकम्पत धनंजयः ॥ २१ ॥

इस ब्रह्मास्त्रको पाकर भी महाबाहु अर्जुन तुम्हारे पिताजी-का उपदेश मानकर कभी क्षात्रधर्मसे विचलित नहीं हुए हैं ॥

एवं धृतिमतः साधोः सर्वास्त्रविदुषः सतः ।
सभ्रातृबन्धोः कस्मात् त्वं वधमस्य चिकीर्षसि ॥ २२ ॥

ये ऐसे धैर्यवान्, साधु, सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता तथा सत्पुरुष हैं, तथापि तुम भाई-बन्धुओंसहित इनका वध करनेकी इच्छा क्यों रखते हो ? ॥ २२ ॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो यत्र परमास्त्रेण वध्यते ।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥ २३ ॥

जिस देशमें एक ब्रह्मास्त्रको दूसरे उत्कृष्ट अस्त्रसे दबा दिया जाता है, उस राष्ट्रमें बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं होती है॥

एतदर्थं महाबाहुः शक्तिमानपि पाण्डवः ।
न विहन्त्येतदस्त्रं तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ २४ ॥

इसीलिये प्रजावर्गके हितकी इच्छासे महाबाहु अर्जुन शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे इस अस्त्रको नष्ट नहीं कर रहे हैं ॥

पाण्डवास्त्वं च राष्ट्रं च सदा संरक्ष्यमेव हि ।
तस्मात् संहर दिव्यं त्वमस्त्रमेतन्महाभुज ॥ २५ ॥

महाबाहो ! तुम्हें पाण्डवोंकी, अपनी और इस राष्ट्रकी भी सदा रक्षा ही करनी चाहिये; इसलिये तुम अपने इस दिव्यास्त्रको लौटा लो ॥ २५ ॥

अरोषस्तव चैवास्तु पार्थाः सन्तु निरामयाः ।
न ह्यधर्मेण राजर्षिः पाण्डवो जेतुमिच्छति ॥ २६ ॥

तुम्हारा रोष शान्त हो और पाण्डव भी स्वस्थ रहें । पाण्डुपुत्र राजर्षि युधिष्ठिर किसीको भी अधर्मसे नहीं जीतना चाहते हैं ॥ २६ ॥

मणिं चैव प्रयच्छाद्य यस्ते शिरसि तिष्ठति ।
एतदादाय ते प्राणान् प्रतिदास्यन्ति पाण्डवाः ॥ २७ ॥

तुम्हारे सिरमें जो मणि है, इसे आज इन्हें दे दो । इस मणिको ही लेकर पाण्डव बदलेमें तुम्हें प्राणदान देंगे ॥२७॥

द्रौणिरुवाच

पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत् कौरवैर्धनम् ।
अवाप्तमिह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते ॥ २८ ॥

अश्वत्थामा बोला—पाण्डवोंने अबतक जो-जो रत्न प्राप्त किये हैं तथा कौरवोंने भी यहाँ जो धन पाया है, मेरी यह मणि उन सबसे अधिक मूल्यवान् है ॥ २८ ॥

यमाबध्य भयं नास्ति शस्त्रव्याधिक्षुधाश्रयम् ।
देवेभ्यो दानवेभ्यो वा नागेभ्यो वा कथंचन ॥ २९ ॥

इसे बाँध लेनेपर शस्त्र, व्याधि, क्षुधा, देवता, दानव अथवा नाग किसीसे भी किसी तरहका भय नहीं रहता ॥

न च रक्षोगणभयं न तस्करभयं तथा ।
एवंवीर्यो मणिरयं न मे त्याज्यः कथंचन ॥ ३० ॥

न राक्षसोंका भय रहता है न चोरोंका । मेरी इस मणि-का ऐसा अद्भुत प्रभाव है । इसलिये मुझे इसका त्याग तो किसी प्रकार भी नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥

यत्तु मे भगवानाह तन्मे कार्यमनन्तरम् ।
अयं मणिरयं चाहमीषिका तु पतिष्यति ॥ ३१ ॥
गर्भेषु पाण्डवेयानाममोघं चैतदुत्तमम् ।
न च शक्तोऽस्मि भगवन् संहर्तुं पुनरुद्यतम् ॥ ३२ ॥

परंतु आप पूज्यपाद महर्षि मुझे जो आज्ञा देते हैं उसी-का अब मुझे पालन करना है, अतः यह रही मणि और यह रहा मैं । किंतु यह दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित की हुई सींक तो पाण्डवोंके गर्भस्थ शिशुओंपर गिरेगी ही; क्योंकि यह उत्तम अस्त्र अमोघ है । भगवन् ! इस उठे हुए अस्त्रको मैं पुनः लौटा लेनेमें असमर्थ हूँ ॥ ३१-३२ ॥

एतदस्त्रमतश्चैव गर्भेषु विसृजाम्यहम् ।
न च वाक्यं भगवतो न करिष्ये महामुने ॥ ३३ ॥

महामुने ! अतः यह अस्त्र मैं पाण्डवोंके गर्भोंपर ही छोड़ रहा हूँ । आपकी आज्ञाका मैं कदापि उल्लङ्घन नहीं करूँगा॥

व्यास उवाच

एवं कुरु न चान्या तु बुद्धिः कार्या त्वयानघ ।
गर्भेषु पाण्डवेयानां विसृज्यैतदुपारम ॥ ३४ ॥

व्यासजीने कहा—अनघ ! अच्छा, ऐसा ही करो । अब अपने मनमें दूसरा कोई विचार न लाना । इस अस्त्रको पाण्डवोंके गर्भोंपर ही छोड़कर शान्त हो जाओ ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः परममस्त्रं तु द्रौणिरुद्यतमाहवे ।
द्वैपायनवचः श्रुत्वा गर्भेषु प्रमुमोच ह ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! व्यासजीका यह वचन सुनकर द्रोणकुमारने युद्धमें उठे हुए उस दिव्यास्त्रको पाण्डवोंके गर्भोंपर ही छोड़ दिया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि ब्रह्मशिरोऽस्त्रस्य पाण्डवेयगर्भप्रवेशने पञ्चदशोऽध्यायः १५ ॥ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें ब्रह्मास्त्रका पाण्डवोंके गर्भमें प्रवेशविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीकृष्णसे शाप पाकर अश्वत्थामाका वनको प्रस्थान तथा पाण्डवोंका मणि देकर द्रौपदीको शान्त करना

वैशम्पायन उवाच

तदाज्ञाय हृषीकेशो विसृष्टं पापकर्मणा ।
हृष्यमाण इदं वाक्यं द्रौणिं प्रत्यब्रवीत्तदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! पापी अश्वत्थामाने अपना अस्त्र पाण्डवोंके गर्भपर छोड़ दिया, यह जानकर भगवान् श्रीकृष्णको बड़ी प्रसन्नता हुई । उस समय उन्होंने द्रोणपुत्रसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

विराटस्य सुतां पूर्वं स्नुषां गाण्डीवधन्वनः ।
उपप्लव्यगतां दृष्ट्वा व्रतवान् ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ २ ॥

'पहलेकी बात है, राजा विराटकी कन्या और गाण्डीवधारी अर्जुनकी पुत्रवधू जब उपप्लव्यनगरमें रहती थी, उस समय किसी व्रतवान् ब्राह्मणने उसे देखकर कहा—॥

परिक्षीणेषु कुरुषु पुत्रस्तव भविष्यति ।
एतदस्य परिक्षित्त्वं गर्भस्थस्य भविष्यति ॥ ३ ॥

'बेटी ! जब कौरववंश परिक्षीण हो जायगा, तब तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा और इसीलिये उस गर्भस्थ शिशुका नाम परिक्षित् होगा' ॥ ३ ॥

तस्य तद् वचनं साधोः सत्यमेतद् भविष्यति ।
परिक्षिद् भविता ह्येषां पुनर्वंशकरः सुतः ॥ ४ ॥

'उस साधु ब्राह्मणका वह वचन सत्य होगा । उत्तराका पुत्र परिक्षित् ही पुनः पाण्डववंशका प्रवर्तक होगा !' ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणं गोविन्दं सात्वतां प्रवरं तदा ।
द्रौणिः परमसंरब्धः प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥ ५ ॥

सात्वतवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा अत्यन्त कुपित हो उठा और उन्हें उत्तर देता हुआ बोला—॥ ५ ॥

नैतदेवं यथाऽऽत्थ त्वं पक्षपातेन केशव ।
वचनं पुण्डरीकाक्ष न च मद्वाक्यमन्यथा ॥ ६ ॥

'कमलनयन केशव ! तुम पाण्डवोंका पक्षपात करते हुए इस समय जैसी बात कह गये हो, वह कभी हो नहीं सकती । मेरा वचन झूठा नहीं होगा ॥ ६ ॥

पतिष्यति तदस्त्रं हि गर्भे तस्या मयोद्यतम् ।
विराटदुहितुः कृष्ण यं त्वं रक्षितुमिच्छसि ॥ ७ ॥

'श्रीकृष्ण ! मेरे द्वारा चलाया गया वह अस्त्र विराटपुत्री उत्तराके गर्भपर ही, जिसकी तुम रक्षा करना चाहते हो, गिरेगा' ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच

अमोघः परमास्त्रस्य पातस्तस्य भविष्यति ।
स तु गर्भो मृतो जातो दीर्घमायुरवाप्स्यति ॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले—द्रोणकुमार ! उस दिव्य अस्त्रका प्रहार तो अमोघ ही होगा । उत्तराका वह गर्भ मरा हुआ ही पैदा होगा; फिर उसे लंबी आयु प्राप्त हो जायगी ॥ ८ ॥

त्वां तु कापुरुषं पापं विदुः सर्वे मनीषिणः ।
असकृत्पापकर्माणं बालजीवितघातकम् ॥ ९ ॥
तस्मात्त्वमस्य पापस्य कर्मणः फलमाप्नुहि ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि चरिष्यसि महीमिमाम् ॥ १० ॥
अप्राप्नुवन् क्वचित् काञ्चित् संविदं जातु केनचित् ।
निर्जनानसहायस्त्वं देशान् प्रविचरिष्यसि ॥ ११ ॥

परंतु तुझे सभी मनीषी पुरुष कायर, पापी, बारंबार पापकर्म करनेवाला और बाल-हत्यारा समझते हैं । इसलिये तू इस पाप-कर्मका फल प्राप्त कर ले । आजसे तीन हजार वर्षोंतक तू इस पृथ्वीपर भटकता फिरेगा । तुझे कभी कहीं और किसीके साथ भी बातचीत करनेका सुख नहीं मिल सकेगा । तू अकेला ही निर्जन-स्थानोंमें घूमता रहेगा ९—११

भवित्री न हि ते क्षुद्र जनमध्येषु संस्थितिः ।
पूयशोणितगन्धी च दुर्गकान्तारसंश्रयः ॥ १२ ॥
विचरिष्यसि पापात्मन् सर्वव्याधिसमन्वितः ।

ओ नीच ! तू जनसमुदायमें नहीं ठहर सकेगा । तेरे शरीरसे पीब और लोहूकी दुर्गन्ध निकलती रहेगी; अतः तुझे दुर्गम स्थानोंका ही आश्रय लेना पड़ेगा । पापात्मन् ! तू सभी रोगोंसे पीड़ित होकर इधर-उधर भटकेगा ॥ १२½ ॥

वयः प्राप्य परिक्षित् तु वेदव्रतमवाप्य च ॥ १३ ॥
कृपाच्छारद्वताच्छूरः सर्वास्त्राण्युपपत्स्यते ।

परिक्षित् तो दीर्घ आयु प्राप्त करके ब्रह्मचर्यपालन एवं वेदाध्ययनका व्रत धारण करेगा और वह शूरवीर बालक शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यसे ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करेगा ॥ १३½ ॥

विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः ॥ १४ ॥
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति ।

इस प्रकार उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके क्षत्रिय-धर्ममें स्थित हो साठ वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन करेगा १४½

इतश्चोर्ध्वं महाबाहुः कुरुराजो भविष्यति ॥ १५ ॥
परिक्षिन्नाम नृपतिर्मिषतस्ते सुदुर्मते ।

दुर्मते ! इसके बाद तेरे देखते-देखते महाबाहु कुरुराज परिक्षित् ही इस भूमण्डलका सम्राट् होगा ॥ १५½ ॥

अहं तं जीवयिष्यामि दग्धं शस्त्राग्नितेजसा ।
पश्य मे तपसो वीर्यं सत्यस्य च नराधम ॥ १६ ॥

नराधम ! तेरी शस्त्राग्निके तेजसे दग्ध हुए उस बालकको मैं जीवित कर दूँगा । उस समय तू मेरे तप और सत्यका प्रभाव देख लेना ॥ १६ ॥

व्यास उवाच

यस्मादनादृत्य कृतं त्वयास्मान् कर्म दारुणम् ।
ब्राह्मणस्य सतश्चैव यस्मात् ते वृत्तमीदृशम् ॥ १७ ॥
तस्माद् यद् देवकीपुत्र उक्तवानुत्तमं वचः ।
असंशयं ते तद् भावि क्षत्रधर्मस्त्वयाऽऽश्रितः ॥ १८ ॥

व्यासजीने कहा—द्रोणकुमार ! तूने हमलोगोंका अनादर करके यह भयंकर कर्म किया है, ब्राह्मण होनेपर भी तेरा आचार ऐसा गिर गया है और तूने क्षत्रियधर्मको अपना लिया है; इसलिये देवकीनन्दन श्रीकृष्णने जो उत्तम बात कही है, वह सब तेरे लिये होकर ही रहेगी, इसमें संशय नहीं है ॥ १७-१८ ॥

अश्वत्थामोवाच

सहैव भवता ब्रह्मन् स्थास्यामि पुरुषेष्विह ।
सत्यवागस्तु भगवानयं च पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥

अश्वत्थामा बोला—ब्रह्मन् ! अब मैं मनुष्योंमें केवल आपके ही साथ रहूँगा । इन भगवान् पुरुषोत्तमकी बात सत्य हो ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रदायाथ मणिं द्रौणिः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
जगाम विमनास्तेषां सर्वेषां पश्यतां वनम् ॥ २० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इसके बाद महात्मा पाण्डवोंको मणि देकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा उदास मनसे उन सबके देखते-देखते वनमें चला गया ॥ २० ॥

पाण्डवाश्चापि गोविन्दं पुरस्कृत्य हतद्विषः ।
कृष्णद्वैपायनं चैव नारदं च महामुनिम् ॥ २१ ॥
द्रोणपुत्रस्य सहजं मणिमादाय सत्वराः ।
द्रौपदीमभ्यधावन्त प्रायोपेतां मनस्विनीम् ॥ २२ ॥

इधर जिनके शत्रु मारे गये थे, वे पाण्डव भी भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास तथा महामुनि नारदजीको आगे करके द्रोणपुत्रके साथ ही उत्पन्न हुई मणि लिये आमरण अनशनका निश्चय किये बैठी हुई मनस्विनी द्रौपदीके पास पहुँचनेके लिये शीघ्रतापूर्वक चले ॥ २१-२२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पुरुषव्याघ्राः सदश्वैरनिलोपमैः ।
अभ्ययुः सहदाशार्हाः शिबिरं पुनरेव हि ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णसहित वे पुरुषसिंह पाण्डव वहाँसे वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंद्वारा पुनः अपने शिबिरमें आ पहुँचे ॥ २३ ॥

अवतीर्य रथेभ्यस्तु त्वरमाणा महारथाः ।
ददृशुर्द्रौपदीं कृष्णामार्तामार्ततराः स्वयम् ॥ २४ ॥

वहाँ रथोंसे उतरकर वे महारथी वीर बड़ी उतावलीके साथ आकर शोकपीड़ित द्रुपदकुमारी कृष्णासे मिले । वे स्वयं भी शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे ॥ २४ ॥

तामुपेत्य निरानन्दां दुःखशोकसमन्विताम् ।
परिवार्य व्यतिष्ठन्त पाण्डवाः सहकेशवाः ॥ २५ ॥

दुःख-शोकमें डूबी हुई आनन्दशून्य द्रौपदीके पास पहुँचकर श्रीकृष्णसहित पाण्डव उसे चारों ओरसे घेरकर बैठ गये ॥ २५ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो भीमसेनो महाबलः ।
प्रददौ तं मणिं दिव्यं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

तब राजाकी आज्ञा पाकर महाबली भीमसेनने वह दिव्य मणि द्रौपदीके हाथमें दे दी और इस प्रकार कहा– ॥ २६ ॥

अयं भद्रे तव मणिः पुत्रहन्तुर्जितः स ते ।
उत्तिष्ठ शोकमुत्सृज्य क्षात्रधर्ममनुस्मर ॥ २७ ॥

'भद्रे ! यह तुम्हारे पुत्रोंका वध करनेवाले अश्वत्थामाकी मणि है । तुम्हारे उस शत्रुको हमने जीत लिया । अब शोक छोड़कर उठो और क्षत्रिय-धर्मका स्मरण करो ॥ २७ ॥

प्रयाणे वासुदेवस्य शमार्थमसितेक्षणे ।
यान्युक्तानि त्वया भीरु वाक्यानि मधुघातिनि ॥ २८ ॥

'कजरारे नेत्रोंवाली भोली-भाली कृष्णे ! जब मधुसूदन श्रीकृष्ण कौरवोंके पास संधि करानेके लिये जा रहे थे, उस समय तुमने इनसे जो बातें कही थीं, उन्हें याद तो करो ॥

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा भ्रातरो न च ।
न वै त्वमिति गोविन्द शममिच्छति राजनि ॥ २९ ॥
उक्तवत्यसि तीव्राणि वाक्यानि पुरुषोत्तमम् ।
क्षत्रधर्मानुरूपाणि तानि संस्मर्तुमर्हसि ॥ ३० ॥

'जब राजा युधिष्ठिर शान्तिके लिये संधि कर लेना चाहते थे, उस समय तुमने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे बड़े कठोर वचन कहे थे—'गोविन्द ! (मेरे अपमानको भुलाकर शत्रुओंके साथ संधि की जा रही है, इसलिये मैं समझती हूँ कि) न मेरे पति हैं, न पुत्र हैं, न भाई हैं और न तुम्हीं हो' । क्षत्रिय-धर्मके अनुसार कहे गये उन वचनोंको तुम्हें आज स्मरण करना चाहिये ॥ २९-३० ॥

हतो दुर्योधनः पापो राज्यस्य परिपन्थिकः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं विस्फुरतो मया ॥ ३१ ॥
वैरस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ।
जित्वा मुक्तो द्रोणपुत्रो ब्राह्मण्याद् गौरवेण च ॥ ३२ ॥

'हमारे राज्यका लुटेरा पापी दुर्योधन मारा गया और छटपटाते हुए दुःशासनका रक्त भी मैंने पी लिया। वैरका भरपूर बदला चुका लिया गया। अब कुछ कहनेकी इच्छावाले लोग हमलोगोंकी निन्दा नहीं कर सकते। हमने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको जीतकर केवल ब्राह्मण और गुरुपुत्र होनेके कारण ही उसे जीवित छोड़ दिया है ॥ ३१-३२ ॥

यशोऽस्य पतितं देवि शरीरं त्ववशेषितम्।
वियोजितश्च मणिना भ्रंशितश्चायुधं भुवि ॥ ३३ ॥

'देवि! उसका सारा यश धूलमें मिल गया। केवल शरीर शेष रह गया है। उसकी मणि भी छीन ली गयी और उससे पृथ्वीपर हथियार डलवा दिया गया है' ॥ ३३ ॥

द्रौपद्युवाच

केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम।
शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ॥ ३४ ॥

द्रौपदी बोली—भरतनन्दन! गुरुपुत्र तो मेरे लिये भी गुरुके ही समान हैं। मैं तो केवल पुत्रोंके वधका प्रतिशोध लेना चाहती थी, वह पा गयी। अब महाराज इस मणिको अपने मस्तकपर धारण करें ॥ ३४ ॥

तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत् तदा।
गुरोरुच्छिष्टमित्येव द्रौपद्या वचनादपि ॥ ३५ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने वह मणि लेकर द्रौपदीके कथनानुसार उसे अपने मस्तकपर ही धारण कर लिया। उन्होंने उस मणिको गुरुका प्रसाद ही समझा ॥ ३५ ॥

ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन् प्रभुः।
शुशुभे स तदा राजा सचन्द्र इव पर्वतः ॥ ३६ ॥

उस दिव्य एवं उत्तम मणिको मस्तकपर धारण करके शक्तिशाली राजा युधिष्ठिर चन्द्रोदयकी शोभासे युक्त उदयाचलके समान सुशोभित हुए ॥ ३६ ॥

उत्तस्थौ पुत्रशोकार्ता ततः कृष्णा मनस्विनी।
कृष्णं चापि महाबाहुः परिपप्रच्छ धर्मराट् ॥ ३७ ॥

तब पुत्रशोकसे पीड़ित हुई मनस्विनी कृष्णा अनशन छोड़कर उठ गयी और महाबाहु धर्मराजने भगवान् श्रीकृष्णसे एक बात पूछी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि द्रौपदीसान्त्वनायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें द्रौपदीकी सान्त्वनाविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

अपने समस्त पुत्रों और सैनिकोंके मारे जानेके विषयमें युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे पूछना और उत्तरमें श्रीकृष्णके द्वारा महादेवजीकी महिमाका प्रतिपादन

वैशम्पायन उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु सौप्तिके तै रथैस्त्रिभिः।
शोचन् युधिष्ठिरो राजा दाशार्हमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! रातको सोते समय उन तीन महारथियोंने पाण्डवोंकी सारी सेनाओंका जो संहार कर डाला था, उसके लिये शोक करते हुए राजा युधिष्ठिरने दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

कथं नु कृष्ण पापेन क्षुद्रेणाकृतकर्मणा।
द्रौणिना निहताः सर्वे मम पुत्रा महारथाः ॥ २ ॥

'श्रीकृष्ण! नीच एवं पापात्मा द्रोणकुमारने कोई विशेष तप या पुण्यकर्म भी तो नहीं किया था, जिससे उसमें अलौकिक शक्ति आ जाती। फिर उसने मेरे सभी महारथी पुत्रोंका वध कैसे कर डाला? ॥ २ ॥

तथा कृतास्त्रविक्रान्ताः सहस्रशतयोधिनः।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रोणपुत्रेण पातिताः ॥ ३ ॥

'द्रुपदके पुत्र तो अस्त्र-विद्याके पूरे पण्डित, पराक्रमी तथा लाखों योद्धाओंके साथ युद्ध करनेमें समर्थ थे तो भी द्रोणपुत्रने उन्हें मार गिराया, यह कितने आश्चर्यकी बात है? ॥ ३ ॥

यस्य द्रोणो महेष्वासो न प्रादादाहवे मुखम्।
निजघ्ने रथिनां श्रेष्ठं धृष्टद्युम्नं कथं नु सः ॥ ४ ॥

'महाधनुर्धर द्रोणाचार्य युद्धमें जिसके सामने मुँह नहीं दिखाते थे, उसी रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाने कैसे मार डाला? ॥ ४ ॥

किं नु तेन कृतं कर्म तथायुक्तं नरर्षभ।
यदेकः समरे सर्वानवधीन्नो गुरोः सुतः ॥ ५ ॥

'नरश्रेष्ठ! आचार्यपुत्रने ऐसा कौन-सा उपयुक्त कर्म किया था, जिससे उसने अकेले ही समराङ्गणमें हमारे सभी सैनिकोंका वध कर डाला' ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच

नूनं स देवदेवानामीश्वरेश्वरमव्ययम्।
जगाम शरणं द्रौणिरेकस्तेनावधीद् बहून् ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! निश्चय ही अश्वत्थामाने ईश्वरोंके भी ईश्वर देवाधिदेव अविनाशी भगवान् शिवकी शरण ली थी, इसीलिये उसने अकेले ही बहुत-से वीरोंका विनाश कर डाला ॥ ६ ॥

प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि।
वीर्यं च गिरिशो दद्याद् येनेन्द्रमपि शातयेत् ॥ ७ ॥

पर्वतपर शयन करनेवाले महादेवजी तो प्रसन्न होनेपर अमरत्व भी दे सकते हैं। वे उपासकको इतनी शक्ति दे देते हैं, जिससे वह इन्द्रको भी नष्ट कर सकता है ॥ ७ ॥

वेदाहं हि महादेवं तत्त्वेन भरतर्षभ ।
यानि चास्य पुराणानि कर्माणि विविधानि च॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मैं महादेवजीको यथार्थरूपसे जानता हूँ। उनके जो नाना प्रकारके प्राचीन कर्म हैं, उनसे भी मैं पूर्ण परिचित हूँ ॥ ८ ॥

आदिरेष हि भूतानां मध्यमन्तश्च भारत ।
विचेष्टते जगच्चेदं सर्वमस्यैव कर्मणा ॥ ९ ॥

भरतनन्दन ! ये भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंके आदि, मध्य और अन्त हैं। उन्हींके प्रभावसे यह सारा जगत् भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ करता है ॥ ९ ॥

एवं सिसृक्षुर्भूतानि ददर्श प्रथमं विभुः ।
पितामहोऽब्रवीच्चैनं भूतानि सृज मा चिरम् ॥ १० ॥

प्रभावशाली ब्रह्माजीने प्राणियोंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे सबसे पहले महादेवजीको ही देखा था। तब पितामह ब्रह्माने उनसे कहा—'प्रभो ! आप अविलम्ब सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि कीजिये' ॥ १० ॥

हरिकेशस्तथेत्युक्त्वा भूतानां दोषदर्शिवान् ।
दीर्घकालं तपस्तेपे मग्नोऽम्भसि महातपाः ॥ ११ ॥

यह सुन महादेवजी 'तथास्तु' कहकर भूतगणोंके नाना प्रकारके दोष देख जलमें मग्न हो गये और महान् तपका आश्रय ले दीर्घकालतक तपस्या करते रहे ॥ ११ ॥

सुमहान्तं ततः कालं प्रतीक्ष्यैनं पितामहः ।
स्रष्टारं सर्वभूतानां ससर्ज मनसा परम् ॥ १२ ॥

इधर पितामह ब्रह्माने सुदीर्घकालतक उनकी प्रतीक्षा करके अपने मानसिक संकल्पसे दूसरे सर्वभूतस्रष्टाको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

सोऽब्रवीत् पितरं दृष्ट्वा गिरिशं सुप्तमम्भसि ।
यदि मे नाग्रजोऽस्त्यन्यस्ततः स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः॥ १३ ॥

उस विराट् पुरुष या स्रष्टाने महादेवजीको जलमें सोया देख अपने पिता ब्रह्माजीसे कहा—'यदि दूसरा कोई मुझसे ज्येष्ठ न हो तो मैं प्रजाकी सृष्टि करूँगा' ॥ १३ ॥

तमब्रवीत् पिता नास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः ।
स्थाणुरेष जले मग्नो विस्रब्धः कुरु वै कृतम् ॥ १४ ॥

यह सुनकर पिता ब्रह्माने स्रष्टासे कहा—'तुम्हारे सिवा दूसरा कोई अग्रज पुरुष नहीं है। ये स्थाणु (शिव) हैं भी तो पानीमें डूबे हुए हैं; अतः तुम निश्चिन्त होकर सृष्टिका कार्य आरम्भ करो' ॥ १४ ॥

भूतान्यन्वसृजत् सप्त दक्षादींस्तु प्रजापतीन् ।
यैरिमं व्यकरोत् सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ १५ ॥

तब स्रष्टाने सात प्रकारके प्राणियों और दक्ष आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न किया, जिनके द्वारा उन्होंने इस चार प्रकारके समस्त प्राणिसमुदायका विस्तार किया ॥ १५ ॥

ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम्।
बिभक्षयिषवो राजन् सहसा प्राद्रवंस्तदा ॥ १६ ॥

राजन् ! सृष्टि होते ही समस्त प्रजा भूखसे पीड़ित हो प्रजापतिको ही खा जानेकी इच्छासे सहसा उनके पास दौड़ी गयी ॥ १६ ॥

स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवत् ।
आभ्यो मां भगवांस्त्रातु वृत्तिरासां विधीयताम्॥ १७ ॥

जब प्रजा प्रजापतिको अपना आहार बनानेके लिये उद्यत हुई, तब वे आत्मरक्षाके लिये बड़े वेगसे भागकर पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'भगवन् ! आप मुझे इन प्रजाओंसे बचाइये और इनके लिये कोई जीविका-वृत्ति नियत कर दीजिये' ॥ १७ ॥

ततस्ताभ्यो ददावन्नमोषधीः स्थावराणि च ।
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ॥ १८ ॥

तब ब्रह्माजीने उन प्रजाओंको अन्न और ओषधि आदि स्थावर वस्तुएँ जीवन-निर्वाहके लिये दीं और अत्यन्त बलवान् हिंसक जन्तुओंके लिये दुर्बल जङ्गम प्राणियोंको ही आहार निश्चित कर दिया ॥ १८ ॥

विहितान्नाः प्रजास्तास्तु जग्मुः सृष्टा यथागतम् ।
ततो ववृधिरे राजन् प्रीतिमत्यः स्वयोनिषु ॥ १९ ॥

जिनकी सृष्टि हुई थी, उनके लिये जब भोजनकी व्यवस्था कर दी गयी, तब वे प्रजावर्गके लोग जैसे आये थे, वैसे लौट गये। राजन् ! तदनन्तर सारी प्रजा अपनी ही योनियोंमें प्रसन्नतापूर्वक रहती हुई उत्तरोत्तर बढ़ने लगी॥१९॥

भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरावपि ।
उदतिष्ठज्जलाज्ज्येष्ठः प्रजाश्चेमा ददर्श सः ॥ २० ॥

जब प्राणिसमुदायकी भलीभाँति वृद्धि हो गयी और लोक-गुरु ब्रह्मा भी संतुष्ट हो गये, तब वे ज्येष्ठ पुरुष शिव जलसे बाहर निकले। निकलनेपर उन्होंने इन समस्त प्रजाओंको देखा ॥ २० ॥

बहुरूपाः प्रजाः सृष्टा विवृद्धाश्च स्वतेजसा ।
चुक्रोध भगवान् रुद्रो लिङ्गं स्वं चाप्यविध्यत॥ २१ ॥

अनेक रूपवाली प्रजाकी सृष्टि हो गयी और वह अपने ही तेजसे भलीभाँति बढ़ भी गयी। यह देखकर भगवान् रुद्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपना लिङ्ग काटकर फेंक दिया ॥ २१ ॥

तत् प्रविद्धं तथा भूमौ तथैव प्रत्यतिष्ठत ।
तमुवाचाव्ययो ब्रह्मा वचोभिः शमयन्निव ॥ २२ ॥

इस प्रकार भूमिपर डाला गया वह लिङ्ग उसी रूपमें प्रतिष्ठित हो गया। तब अविनाशी ब्रह्माने अपने वचनोंद्वारा उन्हें शान्त करते हुए-से कहा—॥ २२ ॥

किं कृतं सलिले शर्व चिरकालस्थितेन ते ।
किमर्थं चेदमुत्पाद्य लिङ्गं भूमौ प्रवेशितम् ॥ २३ ॥

'रुद्रदेव ! आपने दीर्घकालतक जलमें स्थित रहकर कौन-सा कार्य किया है ? और इस लिङ्गको उत्पन्न करके किसलिये पृथ्वीपर डाल दिया है ?' ॥ २३ ॥

सोऽब्रवीज्जातसंरम्भस्तथा लोकगुरुर्गुरुम् ।
प्रजाः सृष्टाः परेणेमाः किं करिष्याम्यनेन वै ॥ २४ ॥

यह प्रश्न सुनकर कुपित हुए जगद्गुरु शिवने ब्रह्माजीसे कहा—'प्रजाकी सृष्टि तो दूसरेने कर डाली; फिर इस लिङ्गको रखकर मैं क्या करूँगा ॥ २४ ॥

तपसाधिगतं चान्नं प्रजार्थं मे पितामह ।
ओषध्यः परिवर्तेरन् यथैवं सततं प्रजाः ॥ २५ ॥

'पितामह ! मैंने जलमें तपस्या करके प्रजाके लिये अन्न प्राप्त किया है; वे अन्नरूप ओषधियाँ प्रजाओंके ही समान निरन्तर विभिन्न अवस्थाओंमें परिणत होती रहेंगी' ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा स सक्रोधो जगाम विमना भवः ।
गिरेर्मुञ्जवतः पादं तपस्तप्तुं महातपाः ॥ २६ ॥

ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए महातपस्वी महादेवजी उदास मनसे मुञ्जवान् पर्वतकी घाटीपर तपस्या करनेके लिये चले गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरकृष्णसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें युधिष्ठिर और श्रीकृष्णका संवादविषयक सतरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

महादेवजीके कोपसे देवता, यज्ञ और जगत्‌की दुरवस्था तथा उनके प्रसादसे सबका स्वस्थ होना

श्रीभगवानुवाच

ततो देवयुगेऽतीते देवा वै समकल्पयन् ।
यज्ञं वेदप्रमाणेन विधिवद् यष्टुमीप्सवः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—तदनन्तर सत्ययुग बीत जानेपर देवताओंने विधिपूर्वक भगवान्‌का यजन करनेकी इच्छासे वैदिक प्रमाणके अनुसार यज्ञकी कल्पना की ॥ १ ॥

कल्पयामासुरथ ते साधनानि हवींषि च ।
भागार्हा देवताश्चैव यज्ञियं द्रव्यमेव च ॥ २ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञके साधनों, हविष्यों, यज्ञभागके अधिकारी देवताओं और यज्ञोपयोगी द्रव्योंकी कल्पना की ॥

ता वै रुद्रमजानन्त्यो याथातथ्येन देवताः ।
नाकल्पयन्त देवस्य स्थाणोर्भागं नराधिप ॥ ३ ॥

नरेश्वर ! उस समय देवता भगवान् रुद्रको यथार्थरूपसे नहीं जानते थे; इसलिये उन्होंने 'स्थाणु' नामधारी भगवान् शिवके भागकी कल्पना नहीं की ॥ ३ ॥

सोऽकल्प्यमाने भागे तु कृत्तिवासा मखेऽमरैः।
ततः साधनमन्विच्छन् धनुरादौ ससर्ज ह ॥ ४ ॥

जब देवताओंने यज्ञमें उनका कोई भाग नियत नहीं किया, तब व्याघ्रचर्मधारी भगवान् शिवने उनके दमनके लिये साधन जुटानेकी इच्छा रखकर सबसे पहले धनुषकी सृष्टि की।

लोकयज्ञः क्रियायज्ञो गृहयज्ञः सनातनः ।
पञ्चभूतनृयज्ञश्च जज्ञे सर्वमिदं जगत् ॥ ५ ॥

लोकयज्ञ, क्रियायज्ञ, सनातन गृहयज्ञ, पञ्चभूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ—ये पाँच प्रकारके यज्ञ हैं। इन्हींसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

लोकयज्ञैर्नृयज्ञैश्च कपर्दी विदधे धनुः ।
धनुः सृष्टमभूत् तस्य पञ्चकिष्कुप्रमाणतः ॥ ६ ॥

मस्तकपर जटाजूट धारण करनेवाले भगवान् शिवने लोकयज्ञ और मनुष्ययज्ञोंसे एक धनुषका निर्माण किया। उनका वह धनुष पाँच हाथ लंबा बनाया गया था ॥ ६ ॥

वषट्कारोऽभवज्ज्या तु धनुषस्तस्य भारत ।
यज्ञाङ्गानि च चत्वारि तस्य संनहनेऽभवन् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! वषट्कार उस धनुषकी प्रत्यञ्चा था। यज्ञके चारों अङ्ग स्नान, दान, होम और जप उन भगवान् शिवके लिये कवच हो गये ॥ ७ ॥

ततः क्रुद्धो महादेवस्तदुपादाय कार्मुकम् ।
आजगामाथ तत्रैव यत्र देवाः समीजिरे ॥ ८ ॥

तदनन्तर कुपित हुए महादेवजी उस धनुषको लेकर उसी स्थानपर आये, जहाँ देवतालोग यज्ञ कर रहे थे ॥८॥

तमात्तकार्मुकं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमव्ययम् ।
विव्यथे पृथिवी देवी पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ९ ॥

उन ब्रह्मचारी एवं अविनाशी रुद्रको हाथमें धनुष उठाये देख पृथ्वीदेवीको बड़ी व्यथा हुई और पर्वत भी काँपने लगे ॥ ९ ॥

न ववौ पवनश्चैव नाग्निर्जज्वाल वैधितः ।
व्यभ्रमच्चापि संविग्नं दिवि नक्षत्रमण्डलम् ॥ १० ॥

हवाकी गति रुक गयी, आग समिधा और घी आदिसे जलानेकी चेष्टा की जानेपर भी प्रज्वलित नहीं होती थी और आकाशमें नक्षत्रोंका समूह उद्विग्न होकर घूमने लगा ॥१०॥

न बभौ भास्करश्चापि सोमः श्रीमुक्तमण्डलः ।
तिमिरेणाकुलं सर्वमाकाशं चाभवद् वृतम् ॥ ११ ॥

सूर्य भी पूर्णतः प्रकाशित नहीं हो रहे थे, चन्द्रमण्डल भी श्रीहीन हो गया था तथा सारा आकाश अन्धकारसे व्याप्त हो रहा था ॥ ११ ॥

अभिभूतास्ततो देवा विषयान्न प्रजज्ञिरे ।
न प्रत्यभाच्च यज्ञः स देवतास्त्रेसिरे तथा ॥ १२ ॥

उससे अभिभूत होकर देवता किसी विषयको पहचान नहीं पाते थे, वह यज्ञ भी अच्छी तरह प्रतीत नहीं होता था। इससे सारे देवता भयसे थर्रा उठे ॥ १२ ॥

ततः स यज्ञं विव्याध रौद्रेण हृदि पत्रिणा ।
अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा सपावकः ॥ १३ ॥

तदनन्तर रुद्रदेवने भयंकर बाणके द्वारा उस यज्ञके हृदयमें आघात किया। तब अग्निसहित यज्ञ मृगका रूप धारण करके वहाँसे भाग निकला ॥ १३ ॥

स तु तेनैव रूपेण दिवं प्राप्य व्यराजत।
अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर नभस्तले ॥ १४ ॥

वह उसी रूपसे आकाशमें पहुँचकर (मृगशिरा नक्षत्रके रूपमें) प्रकाशित होने लगा। युधिष्ठिर ! आकाशमण्डलमें रुद्रदेव उस दशामें भी (आर्द्रा नक्षत्रके रूपमें) उसके पीछे लगे रहते हैं ॥ १४ ॥

अपक्रान्ते ततो यज्ञे संज्ञा न प्रत्यभात् सुरान्।
नष्टसंज्ञेषु देवेषु न प्राज्ञायत किंचन ॥ १५ ॥

यज्ञके वहाँसे हट जानेपर देवताओंकी चेतना लुप्त-सी हो गयी। चेतना लुप्त होनेसे देवताओंको कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ॥ १५ ॥

त्र्यम्बकः सवितुर्बाहू भगस्य नयने तथा।
पूष्णश्च दशनान् क्रुद्धो धनुष्कोट्या व्यशातयत्॥ १६ ॥

उस समय कुपित हुए त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवने अपने धनुषकी कोटिसे सविताकी दोनों बाँहें काट डालीं, भगकी आँखें फोड़ दीं और पूषाके सारे दाँत तोड़ डाले ॥ १६ ॥

प्राद्रवन्त ततो देवा यज्ञाङ्गानि च सर्वशः।
केचित् तत्रैव घूर्णन्तो गतासव इवाभवन् ॥ १७ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण देवता और यज्ञके सारे अङ्ग वहाँसे पलायन कर गये। कुछ वहीं चक्कर काटते हुए प्राणहीन-से हो गये ॥ १७ ॥

स तु विद्राव्य तत् सर्वं शितिकण्ठोऽवहस्य च।
अवष्टभ्य धनुष्कोटिं रुरोध विबुधांस्ततः ॥ १८ ॥

वह सब कुछ दूर हटाकर भगवान् नीलकण्ठने देवताओंका उपहास करते हुए धनुषकी कोटिका सहारा ले उन सबको रोक दिया ॥ १८ ॥

ततो वागमरैरुक्ता ज्यां तस्य धनुषोऽच्छिनत्।
अथ तत् सहसा राजंश्छिन्नज्यं व्यस्फुरद् धनुः॥ १९ ॥

तत्पश्चात् देवताओंद्वारा प्रेरित हुई वाणीने महादेवजीके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली। राजन्! सहसा प्रत्यञ्चा कट जानेपर वह धनुष उछलकर गिर पड़ा ॥ १९ ॥

ततो विधनुषं देवा देवश्रेष्ठमुपागमन्।
शरणं सह यज्ञेन प्रसादं चाकरोत् प्रभुः ॥ २० ॥

तब देवता यज्ञको साथ लेकर धनुषरहित देवश्रेष्ठ महादेवजीकी शरणमें गये। उस समय भगवान् शिवने उन सबपर कृपा की ॥ २० ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् स्थाप्य कोपं जलाशये।
स जलं पावको भूत्वा शोषयत्यनिशं प्रभो ॥ २१ ॥

इसके बाद प्रसन्न हुए भगवान्ने अपने क्रोधको समुद्रमें स्थापित कर दिया। प्रभो ! वह क्रोध वडवानल बनकर निरन्तर उसके जलको सोखता रहता है ॥ २१ ॥

भगस्य नयने चैव बाहू च सवितुस्तथा।
प्रादात् पूष्णश्च दशनान् पुनर्यज्ञांश्च पाण्डव ॥ २२ ॥

पाण्डुनन्दन ! फिर भगवान् शिवने भगको आँखें, सविताको दोनों बाँहें, पूषाको दाँत और देवताओंको यज्ञ प्रदान किये॥

ततः सुस्थमिदं सर्वं बभूव पुनरेव हि।
सर्वाणि च हवींष्यस्य देवा भागमकल्पयन् ॥ २३ ॥

तदनन्तर यह सारा जगत् पुनः सुस्थिर हो गया। देवताओंने सारे हविष्योंमेंसे महादेवजीके लिये भाग नियत किया॥

तस्मिन् क्रुद्धेऽभवत् सर्वमसुस्थं भुवनं प्रभो।
प्रसन्ने च पुनः सुस्थं प्रसन्नोऽस्य च वीर्यवान्॥ २४ ॥

राजन् ! भगवान् शङ्करके कुपित होनेपर सारा जगत् डाँवाडोल हो गया था और उनके प्रसन्न होनेपर वह पुनः सुस्थिर हो गया। वे ही शक्तिशाली भगवान् शिव अश्वत्थामापर प्रसन्न हो गये थे ॥ २४ ॥

ततस्ते निहताः सर्वे तव पुत्रा महारथाः।
अन्ये च बहवः शूराः पाञ्चालस्य पदानुगाः ॥ २५ ॥

इसीलिये उसने आपके सभी महारथी पुत्रों तथा पाञ्चालराजका अनुसरण करनेवाले अन्य बहुत-से शूरवीरोंका वध किया है ॥ २५ ॥

न तन्मनसि कर्तव्यं न च तद् द्रौणिना कृतम्।
महादेवप्रसादेन कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ २६ ॥

अतः इस बातको आप मनमें न लावें। अश्वत्थामाने यह कार्य अपने बलसे नहीं, महादेवजीकी कृपासे सम्पन्न किया है। अब आप आगे जो कुछ करना हो, वही कीजिये॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

॥ सौप्तिकपर्व सम्पूर्णम् ॥

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	७९०॥	(१४)	१९।	८०९॥।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१	....	...	१
सौप्तिकपर्वकी कुल श्लोकसंख्या				८१०॥।